SkskAälbkgApoLAi .kg(kijk
FkPkk AinUQAk
अंक : 83 (संयुक्तांक)
अप्रैल–सितम्बर, 2071
2014 ई.

धर्मायण

प्रधान सम्पादक
भवनाथ झा

सहायक सम्पादक
श्री सुरेशचन्द्र मिश्र

महावीर मन्दिर प्रकाशन
के लिए
प्रो. काशीनाथ मिश्र
द्वारा प्रकाशित
तथा
प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित
अक्षर संयोजक
दिनकर कुमार

पत्र-सम्पर्कः
धर्मायण,
पाणिनि-परिसर,
बुद्ध-मार्ग,
पटना-800001
दूरभाष – 0612-3223293
E-mail:
mahavirmandir@gmail.com

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

विषय-सूची

शारदा-तिलक में रामोपासना का स्वरूप
पं. भवनाथ झा — 2
मगध-क्षेत्र में सूर्य-उपासना की प्राचीनता
पं. सुरेशचन्द्र मिश्र — 11
बिहार के पर्यटन-विकास में हिन्दू-विरासत की भूमिका
आचार्य किशोर कुणाल — 22
जयशंकर प्रसाद की कामायनी के श्रद्धा-मनु एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन
प्रो० (डॉ०) अशोक कुमार 'अंशुमाली' — 26
'विनय-पत्रिका' की हरि-शंकरी
डॉ. (प्रो.) राजेश्वर नारायण सिन्हा — 31
राजर्षि अम्बरीष एवं दुर्वासा की कथा
डॉ. जयनन्दन पाण्डेय — 36
''तुलसी-साहित्य पर संस्कृत के अनार्ष प्रबन्धों की छाया'' एक दृष्टि
डा. आलोक कुमार — 39
सामाजिक सद्भाव का दृष्टान्त : सिमरी का महावीरी झण्डा
डा. लक्ष्मीकान्त मुकुल — 44
व्यावहारिक वेदान्त के प्रतिष्ठाताः स्वामी विवेकानन्द
डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता — 49
'रामलला नहछू' का काव्य-सौन्दर्य
श्री युगल किशोर प्रसाद — 52
धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय और लोक-जीवन
डा. विनय कुमार सिंह — 55
मन्दिर समाचार परिक्रमा — 61

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

शारदा-तिलक में रामोपासना का स्वरूप

भवनाथ झा

देवता के रूप में राम की उपासना कबसे प्रारम्भ हुई यह अनुमान लगाना कठिन है। हम बौद्धग्रन्थ जातक के गाथा वाले भाग में रामराज्य की अवधि के सन्दर्भ में 16000 वर्ष का अतिरंजित अत: अलौकिक आँकड़ा पाते हैं, जो श्रीराम के देवत्व का सूचक है। दशरथ-जातक के एक श्लोक में कहा गया है कि श्रीराम 10 हजार वर्ष एवं 60 सौ वर्ष अर्थात् 16000 वर्ष तक राज्य कर ब्रह्मलोक गये।

दस वस्स सहस्सानि सठ्ठि वस्स सतानि च।

कम्बुगीबो महाबाहु रामो रज्जं अकारथि।।13।। गाथा सं. 13

यह तथ्य अब सिद्ध हो चुका है कि जातक कथाओं का गाथा भाग मूल त्रिपिटक का वह अंश है, जिसका संकलन बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तुरत बाद किया गया। इससे यह सिद्ध होता है कि कम-से-कम ईसा पूर्व 5वीं शती में भी श्रीराम के सम्बन्ध में उनके अलौकिक स्वरूप का अथच देवत्व की अवधारणा समाज में बन चुकी थी।

साथ ही, यह श्लोक इसी रूप में वाल्मीकि-रामायण का था। वर्तमान प्रचलित संस्करण में यह श्लोक इस रूप में मिलता है:-

दश वर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।

रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।। (1.79)

इस श्लोक में यद्यपि 'सट्ठि' अर्थात् साठ के स्थान पर दश वर्ष का उल्लेख है, किन्तु रामायण के किसी संस्करण में पाठान्तर से 'षष्ठिवर्षशतानि' पाठ असंभव नहीं कहा जा सकता। दोनों संख्याओं में से कोई भी मानें, इतना तो कहा ही जा सकता है कि ईसा पूर्व 5वीं शती से पूर्व वाल्मीकि-रामायण की रचना हो चुकी थी और राम के देवत्व की अवधारणा भारतीय संस्कृति में समा चुकी थी।

ईसा की पहली शती में बौद्ध-दार्शनिक अश्वघोष ने सूत्रालंकार में लिखा है कि गाँव के प्रधान व्यक्ति ब्राह्मणों के मुख से वाल्मीकिकृत रामायण का पाठ सुनते थे और उनमें लिखी बातों पर विश्वास कर उनका अनुकरण भी करते थे।

वाकाटक राजा प्रवरसेन ने सेतुबन्ध महाकाव्य में श्रीराम को विष्णु का अवतार माना है।

इसी परम्परा में हम पाते हैं कि शारदा-तिलक वारेन्द्रकुल के विजयाचार्यात्मज श्रीकृष्ण के पुत्र लक्ष्मणदेशिकेन्द्र द्वारा लिखित एक ग्रन्थ है। काश्मीर के आगमाचार्य लक्ष्मणदेशिकेन्द्र ने 9वीं-10वीं शती में शारदातिलक की रचना की जिसमें उन्होंने राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान्, एवं श्रीराम के द्वारपाल, परिजन, पुरजन आदि की उपासना का वर्णन विस्तार से किया है। लक्ष्मणदेशिकेन्द्र

काश्मीर के प्रसिद्ध दार्शनिक अभिनवगुप्त के गुरु कहे जाते हैं। शारदा-तिलक के टीकाकार राघव भट्ट (14वीं शती)ने इसकी पुष्टि की है।

David R. Kinsley ने अपने ग्रन्थ Tantric Vision of the Divine Faminine: The Ten Mahavidyas में इन्हें 9वीं शती का माना है। ...the Sãradã-tilaka (this ninth-century c.e. text is attributed to Lakshmana Desikendra, the guru of the tenth-century Kashmiri philosopher Abhinavagupta). अर्थात् शारदा-तिलक 9वीं शताब्दी ई. की रचना है, जिसकी रचना का श्रेय दशम शती के काश्मीरी दार्शनिक अभिनवगुप्त के गुरु लक्ष्मण देशिक को जाता है। (पृष्ठ 167)

Annette Wilke ने Sound and Communication: An Aesthetic Cultural History of Sanskrit Hinduism में इन्हें 10वीं शती का माना है। "The Śãradã-Tilaka-Tantra, a popular ritual manual compiled by Lakṣmaṇa Deśika probably in the tenth century AD," अर्थात् शारदा-तिलक तन्त्र एक प्रसिद्ध कर्मकाण्ड-सम्बन्धी ग्रन्थ है, जिसका संकलन लक्ष्मण देशिक ने प्रायशः 10वीं शती में किया था। (पृ. 279)

एक अन्य विद्वान् Sanderson ने Atharvavedins in Tantric Terrtory में लक्ष्मणाचार्य को 13वीं शतीके आदि भाग में अथवा इससे कुछ पूर्व उड़ीसा में उत्पन्न माना है, किन्तु Annette Wilke ने इस मत का खण्डन करते हुए अपने पूर्व मत की पुष्टि कर दी है और उन्हें निश्चित रूप से काश्मीर का आचार्य और अभिनवगुप्त का गुरु माना है। Annette Wilke ने पाद-टिप्पणी में अपना मन्तव्य इस प्रकार लिखा है:-

"This date is based on Rãghava Bhatta's (15th cent. AD) identification of Lakṣmaṇa Deśika with one of Abhinavagupta's teachers. Sanderson, "Atharvavedins in Tantric Territory," 230-233, believes this identification of the *Sãradã-Tilaka* commentator Rãghava to be incorrect, because the Śãradã-Tilaka is not a *Trika* text. According to Sanderson, the Śãradã-Tilaka ¡s written in Orissa either in the early 13th century or somewhat earlier. It is indeed a synthetic Tantra bearing no relation to the Trika teaching of Abhinavagupta. On the other hand, the goddess's name " Sãradã" and concepts used such as *samvid* indicate Kashmir. while there is little to indicate Orissa and the 13th century. The writer Lakṣmaṇa could be one of the teachers that Abhinavagupta's *ìśvara-Pratyabhijnã-Vivriti-Vimarśinì* presents as *"Śrì-śãstra-Kṛt,"* which can mean the author of a text for teaching about the goddess or the author of a holy teaching text. However, this Lakṣmaṇa is never quoted or commented on as a philosophical authority. Of course the two works represent different theologies. It is conceivable that the magically oriented Śãradã-Tilaka represents a "sin of youth" on Lakṣmaṇa's part and the author only converted to the *Trika* philosophy once the work ¡s already well known."

अर्थात् यह तिथि राघवभट्ट (15वीं शती) के आधार पर है, जिन्होंने लक्ष्मण देशिक की पहचान अभिनवगुप्त के गुरु के रूप में की है। यद्यपि सैंडर्सन ने ''अथर्ववेदिन्स इन तान्त्रिक टेरिटोरी'' पृ. 230-233 पर मानते हैं कि शारदा-तिलक के टीकाकार राघव भट्ट द्वारा यह पहचान गलत है, क्योंकि शारदा-तिलक त्रिक साहित्य के अन्तर्गत नहीं आता है। सैंडर्सन के अनुसार, शारदा-तिलक की रचना

उड़ीसा में 13वीं शती के आरम्भ में या उससे कुछ पहले हुई थी। यह वस्तुतः एक संश्लिष्ट तान्त्रिक रचना है जिसका सम्बन्ध अभिनवगुप्त के त्रिक-परम्परा से नहीं है। दूसरी ओर, शारदा देवी का नाम तथा इसमे प्रयुक्त अवधारणाओं मे से संवित् की अवधारणा काश्मीर का संकेत करती है, जबकि उड़ीसा एवं 13वीं शती को व्यक्त करने के लिए यहाँ अत्यल्प संकेत हैं। इसके प्रणेता लक्ष्मण उस अभिनवगुप्त के एक गुरु हो सकते हैं, जिन्होंने ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृति को श्रीशास्त्रकृत् के रूप में प्रस्तुत किया था जो उन्हें शक्ति-उपासना साहित्य के प्रणेता के रुप में या पवित्र उपदेश साहित्य के प्रणेता के रूप में साबित करता है। साथ ही, ये लक्ष्मण कभी भी दार्शनिक विद्वान् के रूप में उद्धृत या व्याख्यायित नहीं हुए हैं, वस्तुतः इनकी दो रचनाएँ धर्मशास्त्र की दो धाराओं का प्रवर्तन करती हैं। हमें यह जानना चाहिए कि चमत्कारों पर आधारित यह ग्रन्थ शारदातिलक लक्ष्मण देशिक की ओर से महज चमत्कारपूर्ण ग्रन्थ है और उन्होंने त्रिक-दर्शन को इस रूप में परिवर्तित किया है जो कि पूर्व से प्रख्यात था।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि शारदा-तिलक के प्रणेता लक्ष्मणदेशिक 10वीं शती के अभिनवगुप्त के गुरु थे। इनकी रचना का एक संपादन पं जीवानन्द विद्यासागर के द्वारा कलकत्ता से किया गया, जिसका दूसरा संस्करण 1892 ई में हुआ। इस आलेख में सन्दर्भ के लिए इसी संस्करण का उपयोग किया गया है।

इस ग्रन्थ का एक संपादन Arthur Avlon ने किया है, जिसमें राघवभट्ट की टीका भी उपलब्ध है।

इस ग्रन्थ के 15वें पटल में श्लोक संख्या 83 से 106 तक भगवान् श्रीराम के षडक्षर मन्त्र की व्याख्या, रामयन्त्र, राममालायन्त्र एवं उपासना की विधि का सविस्तर वर्णन किया गया है।

इससे सिद्ध होता है कि 9-10वीं शती में भी राम को आराध्य देव के रूप में आगम की परम्परा में विष्णु, नृसिंह, वराह आदि के साथ प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। श्रीराम के अनेक रूपों में पुरश्चरण की विधि यहाँ बतलायी गयी है।

शारदा-तिलक के इस अंश में सबसे पहले श्रीराम के मन्त्रराज की व्याख्या की गयी है। यह छह अक्षरों का मन्त्र है, जो आजतक रामानन्द सम्प्रदाय में मन्त्रराज के रूप में चर्चित है। इसका मन्त्रोद्धार करते हुए शारदा-तिलक में कहा गया हैं कि:

अनन्तोऽग्न्यासनः सेन्दुबीजं रामाय हृन्मनुः।
षडक्षरोऽयमादिष्टो भजतां कामदो मणिः।।15.83।।

अर्थात् इस मन्त्र में अनन्त यानी आकार एवं अग्नि अर्थात् रेफ के साथ अनुस्वार(रां) है, उसके बाद 'रामाय' शब्द है, फिर हृत् अर्थात् 'नमः' है। इस प्रकार छह अक्षरोंवाला यह मन्त्र इसे जपनेवालों के लिए इच्छा की पूर्ति करनेवाला मणि है। आगे वे कहते हैं कि इस मन्त्र के मुनि ब्रह्मा हैं, छन्द गायत्री है और इस मन्त्र के देवता श्रीराम कहे गये हैं, जिन्होंने राक्षसों का संहार किया था।

इसके बाद इस मन्त्रराज से छह अंगों ब्रह्मरन्ध्र, दोनों भौहों के बीच, हृदय, नाभि, अन्धु एवं दोनों पैरों में न्यास करें। न्यास के बाद भगवान् श्रीराम का ध्यान इन शब्दों में किया गया है:-

कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासिनं
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं
पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादि विविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे।।

अर्थात् काले बादल की छटा के समान छविवाले, नित्य वीरासन में बैठे हुए, एक हाथ ज्ञानमुद्रा के रूप में तथा दूसरे को घुटना पर रखे हुए श्रीराम हैं। वे बगल में बैठी हुई तथा हाथ में कमल धारण करवे वाली सीता को देख रहे हैं. मुकुट आदि अनेक प्रकार के आभूषणों से चमकते हुए विद्युत् के समान चमकते हुए श्री राम को भजता हूँ।

यहाँ दो भुजाओं वाले श्रीराम का ध्यान किया गया है, जो कि उनके देवत्व के विकास का चरम रूप है और यह इस रूप का वर्णन हमें 9-10वीं शती में भी मिलता है।

यहाँ पर मन्त्रराज से पुरश्चरण की विधि भी दी गयी है कि इस मन्त्र का एक लाख जप कर पूजित अग्नि में कमल के फूल से उसका दशांश हवन करें और उसके बाद ब्राह्मण भोजन करावें। इसके बाद श्री सीतायै हुम्। इस मन्त्र से श्री सीताजी की अर्चना करें।

शारदा-तिलक में इसके बाद श्रीराम के परिजनों, पुरजनों आदि के साथ श्रीराम-दरबार की सुन्दर रूपरेखा खींची गयी है। वर्तमान में चर्चित चित्रों की अपेक्षा इसमें वर्णित व्यवस्था एवं लक्ष्मण आदि की अवस्थिति अधिक गरिमामयी है। इसमें कहा गया है कि अष्टदल कमल के मध्य में श्रीराम एवं श्रीसीता का स्थान रखें तथा इसके चारों ओर आठ दलों पर क्रमशः हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न एवं जाम्बवन्त का स्थान बनायें। इनमें हनुमान् का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है कि उनका एक हाथ वारण-मुद्रा में हो और दूसरे हाथ से वे पुस्तक पकडे हों। पुस्तक के साथ हनुमानजी का स्वरूप वर्णन अनुपम है। इससे 'ज्ञानिनामग्रगण्यं' के रूप में उनकी प्रसिद्धि पुष्ट होती है।

वारयन्तं हनूमन्तमग्रतो धृतपुस्तकम्। 15.91।।

भरत एवं शत्रुघ्न के हाथों में चँवर है और वे श्रीराम और सीता के दोनों ओर परस्पर विपरीत दिशा में हैं। पश्चिम दिशा में छत्र पकडे हुए लक्ष्मण की उपासना करनी चाहिए। इस प्रकार पूर्व में हनुमान्, पश्चिम में लक्ष्मण, उत्तर में भरत एवं दक्षिण में शत्रुघ्न का स्थान निरूपित किया गया है और चार कोणों पर सुग्रीव विभीषण, अङ्गद एवं जाम्बवन्त होंगे।

इस अष्टदल कमल की पंखुडियों के अग्र भाग में सृष्टि, जयन्त, विजय, स्वराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल एवं सुमन्त्र रहें। इसके भी बाह्य मण्डल में सभी लोकेशों की पूजा की जानी चाहिए। इसके बाद वाले चक्र में वज्र आदि शस्त्रास्त्रों की पूजा की जानी चाहिए, इस प्रकार श्रीराम के परिजनों एवं पुरजनों का स्थान निर्धारित कर उनकी समवेत उपासना का विधान किया गया है।

शारदा-तिलक में इसके बाद विभिन्न कामनापरक पुरश्चरणों का उल्लेख किया गया है। राजा को वश में करने के लिए जूही के फूल को चन्दन एवं जल से पवित्र कर हवन केरने से राजा वश में हो जाते हैं। धन-धान्य के लिए कमल के फूल से हवन करना चाहिए। नील कमल से हवन करने पर वह सम्पूर्ण संसार के वश में कर लेता है।लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए बेल के फूल से हवन करना

चाहिए। दूर्वा से हवन करने पर वह नीरोग एवं दीर्घायु होता है। लाल कमल से हवन करने से इच्छित धन की प्राप्ति होती है। विद्या की कामना से पलाश के फूल से हवन करना चाहिए। हवन के द्रव्य-विशेष से विशेष फल की बात अगस्त्य संहिता के पन्द्रहवें अध्याय में इसी प्रकार है।

राममन्त्रराज से पवित्र किए गये जल को पीने से एक साल में काव्य लिखने की क्षमता आ जाती है तथा इससे पवित्र किए गये अन्न खाने से नीरोग रहने की बात कही गयी है।

इसके बाद श्रीराम माला मन्त्र ओम् नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुराय प्रसन्न्वदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः का विवेचन किया गया है। इसी रूप में यह विवेचन अगस्त्य-संहिता में भी उपलब्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अगस्त्य-संहिता एवं शारदा तिलक की रामोपासना-विधि समान है। अगस्त्य-संहिता में उल्लिखित काशी-क्षेत्र महिमा के आधार पर विद्वानों ने इसे काशी के आसपास की रचना मानी है जबकि एक अन्य परम्परा इसे दक्षिण भारत की रचना मानती है। कुछ भी हो, शारदा-तिलक के उक्त अंश एवं अगस्त्य-संहिता के वर्ण्य विषय में समानता यह स्पष्ट करती है कि दोनों ने किसी प्राचीनतर परम्परा का अनुव्रजन किया है। ऐसी स्थिति में आगम-परम्परा में रामोपासना 9वीं शदी से भी प्राचीन काल से व्यापक क्षेत्र के जनमानस में प्रचलित मानी जायेगी।

यहाँ प्रबुद्ध पाठकों के लिए शारदा-तिलक का संगत अंश हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत है:-

मनोरस्य समो नास्ति ज्ञानैश्वर्य्यप्रदः पुनः।
अनन्तोऽग्न्यासनः सेन्दुबीजं रामाय हृन्मनुः॥८३॥

इस मन्त्र के समान ज्ञान एवं ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला दूसरा मन्त्र नहीं है। इस मन्त्र में अनन्त अर्थात् आकार के साथ अग्नि का आसन अर्थात् 'र' है, जो इन्दुबीज अर्थात् अनुस्वार के साथ है। इसके आगे 'रामाय' एवं 'हृदय' अर्थात् 'नमः' है।

षडक्षरोऽयमादिष्टो भजतां कामदो मणिः।
ब्रह्मा प्रोक्तो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता मनोः॥८४॥
देशिकेन्द्रैः समाख्यातो रामो राक्षसमर्दनः।

छह अक्षरोंवाला यह मन्त्र जप करनेवालों के लिए सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाला मणि के समान है। इसके मुनि ब्रह्मा हैं, छन्द गायत्री है तथा आगम-वेत्ताओं के द्वारा इसके देवता राक्षसों के संहारक श्रीराम कहे गये हैं।

दीर्घभाजा स्वबीजेन कुर्य्यादङ्गानि षट् क्रमात्॥८५॥
ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये हृन्नाभ्यम्बुषु पादयोः।
षडक्षराणि विन्यस्येन्मन्त्रस्य मनुवित्तमः॥८६॥

अपने बीज मन्त्र के दीर्घ रूप से छह अंगों का न्यास ब्रह्मरन्ध्र, दोनों भौहों के बीच, हृदय, नाभि, मूलचक्र एवं दोनों पैरों में करना चाहिए। मन्त्रज्ञानी इन सभी स्थानों में मन्त्र के छह वर्णों का न्यास करें।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं कमलैः शुभैः।
जुहुयादर्चिते वह्नौ ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः॥८८॥

इस मन्त्र का छह लाख जप कर पूजित अग्नि में इसका दशांश हवन सुन्दर कमल से करें तथा इसके बाद ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

पूजयेद् वैष्णवे पीठे मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत्।
श्रीं सीतायै द्विठान्तेन सीतां पार्श्वगतां यजेत्।।८९।।

वैष्णवपीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति कल्पित करें। श्रीराम के बगल में अवस्थित श्रीसीता का पूजन श्रीं सीतायै द्विट् इस मन्त्र से करना चाहिए।

अग्रे पार्श्वद्वये साङ्गं शरणाङ्गानि तद्बहिः।
हनूमन्तं ससुग्रीवं भरतं सविभीषणम्।।९०।।
लक्ष्मणाङ्गदशत्रुघ्नान् जाम्बवन्तं दलेष्विमान्।
वारयन्तं हनूमन्तमग्रतो धृतपुस्तकम्।।९१।।
भजेद् भरतशत्रुघ्नौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ।
धृतातपत्रं हस्ताभ्यां लक्षणं पश्चिमे यजेत्।।९२।।
सृष्टिं जयन्तं विजयं स्वराष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनम्।
अकोपं धर्मपालाख्यं सुमन्त्रञ्च दलाग्रतः।।९३।।
सर्वाभरणसम्पन्नान् लोकेशानर्चयेत् ततः।
ततस्तानि ततो बाह्ये वज्रादीनि प्रपूजयेत्।।९४।।

आगे एवं दोनों बगल अङ्ग देवताओं की पूजा करें तथा उसके बाहर शरण में आये हुए अंगदेवों की पूजा करें। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न एवं जाम्बवान् को प्रथम आवरण के आठ दलों में स्थापित कर पूजा करें। आगे में वारण मुद्रा एवं हाथ में पुस्तक धारण किये हुए हनुमान् की पूजा करें। दोनों बगल चमर धारण किये हुए भरत एवं शत्रुघ्न की पूजा करें। पीछे की ओर दोनों हाथों से छत्र धारण किये हुए लक्ष्मण की पूजा करें। इन आठ दलों के अग्रभाग में सृष्टि, जयन्त, विजय, स्वराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन अकोप, धर्मपाल एवं सुमन्त्र की पूजा करें। इसके बाहर चक्र में सभी आभूषणों के साथ 14 लोकपालों की पूजा करें। इसके भी बाहरी चक्र में वज्र आदि वैष्णव आयुधों की पूजा करें।

एवं पूजादिभिः सिद्धे मनौ कर्माणि साधयेत्।
जातीप्रसूनैर्जुहुयाच्चन्दनाम्भः समुक्षितैः।।९५।।
राजवैश्याय कमलैर्धनधन्यादिसम्पदे।
नीलोत्पलानां होमेन वशयेदखिलं जगत्।।९६।।
बिल्वप्रसूनैर्जुहुयादिन्दिरावाप्तये नरः।
दूर्वाहोमेन दौर्घायुर्भवेन्मन्त्रो निरामयः।।९७।।
रक्तोत्पलहुतान्मन्त्री धनमाप्नोति वाञ्छितम्।
मेधाकामेन होतव्यं पलाशकुसुमैर्नरः।।९८।।

इस प्रकार पूजा आदि से मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर कामनापरक कर्मों का साधन करें। राजा को वश में करने के लिए चन्दन के जल से सिक्त जूही के फूल से हवन करें। धन-धान्य की कामना से कमल से हवन करें। नीलकमल से हवन करने से सम्पूर्ण संसार वश में हो जाता है। बेल के फूल

से हवन करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। दूर्वा से हवन करने पर लम्बी उम्र होती है। लाल कमल से हवन करने पर धान की प्राप्ति होती है। विद्या की प्राप्ति के लिए पलाश के फूल से हवन करना चाहिए।

तज्ज्तमम्भः प्रपिबेत् कविर्भवति वत्सरात्।
तन्मन्त्रितान्नं भुञ्जीत महदारोग्यमाप्नुयात्।।९९।।

श्रीराम के षडक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने से मनुष्य एक साल में कवि हो जाता है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भोजन करने से आरोग्य मिलता है।

तारं मध्ये विलिखतु मनुं षट्सु कोणेषु सन्धि-
ष्वङ्गे माया स्मरमपि लिखेत् कोणगण्डेषु पश्चात्।
किञ्जल्केषु स्वरगणमथो पत्रमध्येषु माला-
मन्त्रोऽस्यार्णान् गुहमुखमितानष्टमे पञ्चवर्णान्।।१००।।

षट्कोण के मध्य में तारक मन्त्र अर्थात् 'रां रामाय नमः' लिखें छह कोण के अंग भागमें मायाबीज एवं कामबीज लिखें फिर कोण के कपोल प्रदेश अर्थात् दोनों पार्श्वों में भी माया बीज एवं कामबीज लिखें। इस दल के केसर भाग में स्वर वर्णों को लिखें तथा इसके बाहर निर्मित अष्टदल कमल की पंखुरियों पर श्रीराममालामन्त्र लिखें, जिनमें सात दलों पर छह-छह वर्ण एवं आठवें पर पाँच वर्ण होंगे।

दशाक्षरेण संवेष्ट्य कादिवर्णैश्च भूपुरे।
दिग्विदिक्षु लिखेद्बीजे नरसिंहवराहयोः।।१०१।।

इस यन्त्र को दशाक्षर मन्त्र से वेष्टित करें तथा भूपुर पर 'क' से लेकर 'क्ष' तक लिखें। चारों दिशाओं एवं कोणों में नरसिंह एवं वराह के मन्त्र लिखें।

नमो भगवते ब्रूयाच्चतुर्थ्या रघुनन्दनम्।
रक्षोघ्नविशदायान्ते मधुरादि समीरयेत्।।१०२।।
प्रसन्नवदनायेति पश्चादमिततेजसे।
बलाय पश्चाद्रामाय विष्णवे तदनन्तरम्।।१०३।।
प्रणवादि नमोऽन्तोऽयं मालामनुरुदौरितः।

मालामन्त्र में सबसे पहले **नमः** पद का उच्चारण करें फिर **रघुनन्दनाय** शब्द चतुर्थी विभक्ति में लिखें। इसके बाद **रक्षोघ्नविशदाय** और **मधुराय** आदि लिखें। फिर **प्रसन्नवदनाय** तथा इसके बाद **अमिततेजसे** लिखें। **बलाय** के बाद **रामाय** तथा इसके बाद **विष्णवे** कहें। फिर अन्त में **नमः** का उच्चारण करें। आरम्भ में प्रणव ॐ एवं अन्त में नमः पद से युक्त यह मालामन्त्र कहा गया है।

जानकीवल्लभायाथ भवेत् पावकवल्लभा।।१०४।।
हुमादिरेषु कथितो राममन्त्रो दशाक्षरः।
जपादिसाधितं यन्त्रं स्वर्णपट्टादिकल्पितम्।।१०५।।
बाहुना विधृतं दद्यात् विजयश्रीपराक्रमान्।
गदितं रामचन्द्रस्य विधानं सुरपूजितम्।।१०६।।

इसके बाद 'जानकीवल्लभाय' कहें फिर 'स्वाहा' का उच्चारण करें जो अग्नि की प्रिया कही गयी है। इस मन्त्र के आरम्भ में 'हुं' इस प्रकार श्रीराम का दशाक्षर मन्त्र कहा गया है।अर्थात् **हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा** यह श्रीराम का दशाक्षर मन्त्र है।

जप आदि से साधित यह यन्त्र स्वर्ण-पत्र आदि पर बनाकर बाँह पर धारण करने से विजयश्री देनेवाला है। इस प्रकार मैंने श्रीराम की वह पूजा-विधि कही, जिसकी प्रशंसा देवगण भी करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 10वीं शती के ग्रन्थ शारदा-तिलक में रामोपासना का विशद तथा विकसित विवेचन उपलब्ध है और इस पर अगस्त्य-संहिता में वर्णित सिद्धान्तों की व्यापक छाया भी है।

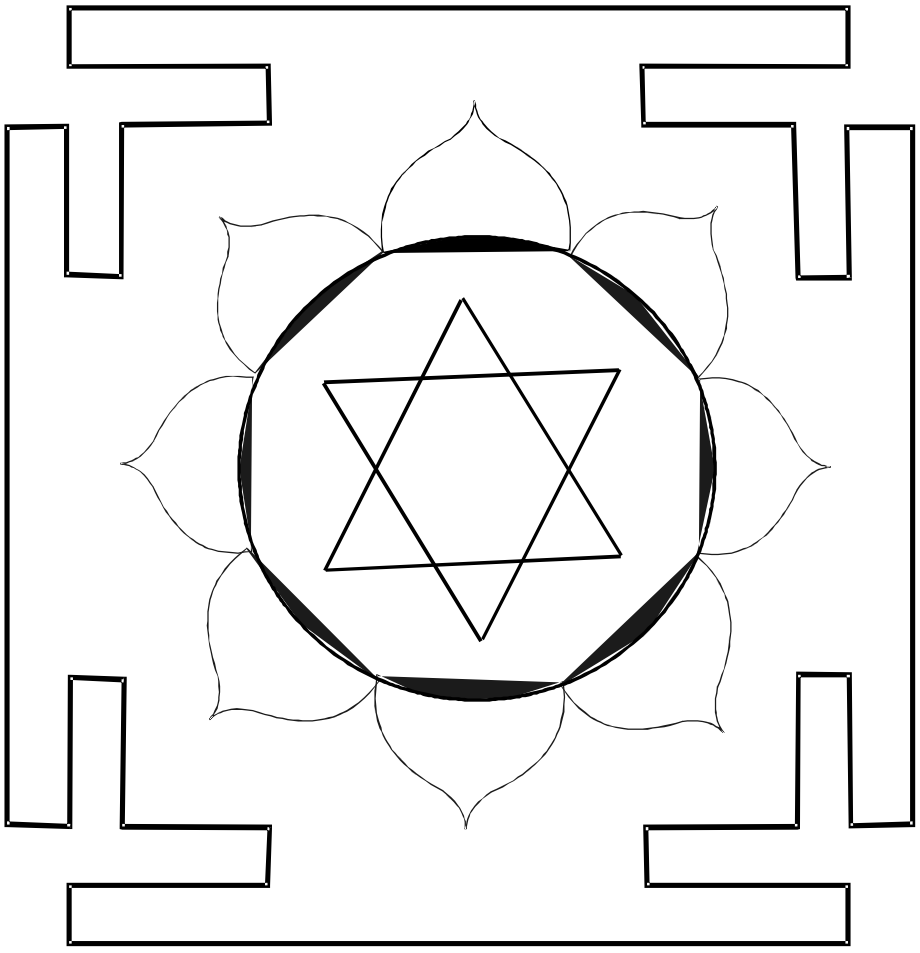

श्रीरामयन्त्र (धारण करने के लिए)

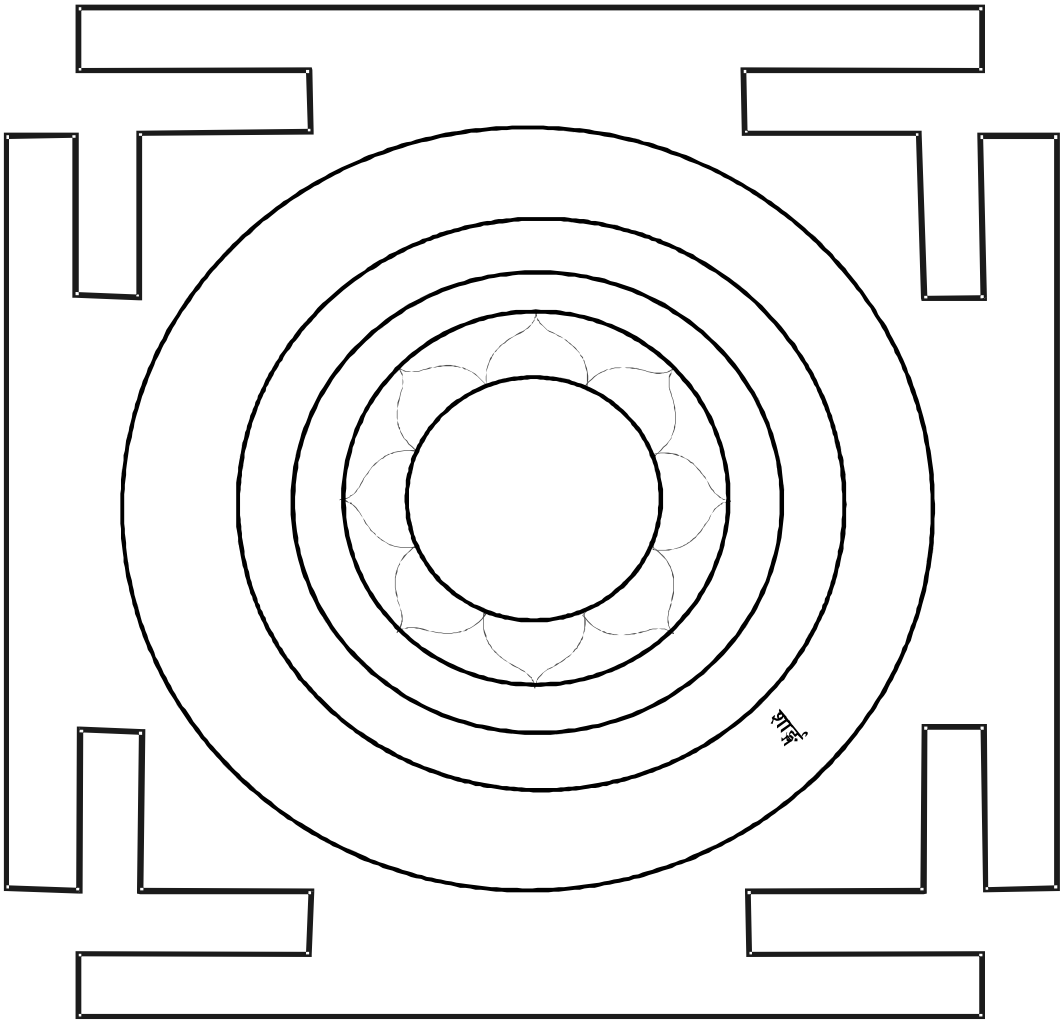

श्रीरामपूजन यन्त्र

साम्ब-पुराण के एक प्रक्षेप में

मगध-क्षेत्र में सूर्य-उपासना की प्राचीनता

पं. सुरेशचन्द्र मिश्र

सूर्य हमारे प्राचीनतम पूज्य देवता हैं। इनकी पूजा एवं माहात्म्य का विशद वर्णन साम्ब पुराण में प्रचुरता से उपलब्ध है। यों तो भारतवर्ष के अधिकांश क्षेत्रों में सूर्य देवता की पूजा होती है परन्तु बिहार के मगध क्षेत्र की सूर्य-पूजा की चमक कुछ और ही है। यह चमक क्यों है इसकी तह में जाने से पहले यह विचारणीय होगा कि बुद्ध का भ्रमण स्थल होने कारण इसका नाम बिहार पड़ा, परन्तु बिहार के एक क्षेत्र-विशेष को मगध क्यों कहा जाता है? फिर स्वत: प्रश्न उठ आता है कि जरासंध, अशोक आदि राजाओं ने भी इसके नाम मे कभी कोई परिवर्तन क्यों नहीं किया? मुझे जैसा लगता है, मगध क्षेत्र के अधिकांश घरों में सूर्य पूजा यानी सूर्य षष्ठी पूजा कार्त्तिक शुक्ल षष्ठी और चैत्र शुक्ल षष्ठी को बड़े धूम-धाम से सम्पन्न की जाती है। इसमें कठोर उपवास एवं पवित्रता का पूरा ध्यान रखा जाता है। व्रत धारण करनेवाली स्त्रियाँ एवं पुरुष उस समय लोगों को साक्षात् सूर्य देवता ही दिखाई पड़ते हैं। मगध की पूजा-पद्धति भी और जगहों से समानता रखते हुए भी कुछ विशेषता की वाहिका है।

हाँ, तो पहले यह साफ कर दूँ कि इसका नाम 'मगध' क्यों पड़ा। संभवत: सूर्य पूजकों को 'मग' कहा जाता है। 'मग' की पौराणिक व्याख्या है 'मार्त्तण्ड का ज्ञान रखनेवाला'। इसकी वैदिक व्याख्या है- ''मन्त्रोत्पादको गुरु:।''। अत: स्पष्ट है कि यहाँ सूर्य पूजक मगों की प्रधानता होने के कारण इस क्षेत्र का नाम 'मगध' पड़ा। मगान् सूर्यपूजकान् धारयति इति मगध:। अब मगध क्षेत्र की सूर्योपासना पद्धति पर थोड़ा दृष्टिपात करें-

(1) अगर एक साल आपने छठ व्रत करने की ठान ली तो यह व्रत अबाध आप की वंश परम्परा बन गया। ऐसा कठोर नियम अन्य जगहों में नहीं देखा जाता।

(2) अर्घ्य-डाली पर प्रथम वर्ष आपने जो वस्तुएँ रखीं हैं। प्रतिवर्ष उन वस्तुओं से ही अर्घ्य निवेदन किया जायगा।

(3) व्रती दो दिनों का कठोर उपवास करते है। इस अवधि में कंबल अथवा पुआल पर सोना विशेष फलदायक है।

(4) व्रती संयत के दिन से ही किसी से कठोर बात नहीं बोलते हैं।

(5) किसी को कड़ी नजर से देखना व्रत-विरुद्ध माना जाता है।

(6) पुरानी संयत एवं लोहंडा (चतुर्थी एवं पंचमी) के दिन प्रसाद खाने के लिए यथाशक्य विना भेदभाव के सबों को बुलाया जायगा, यहाँ जाति-पाति का भेद-भाव अत्यन्त वर्जित है।

(7) सूर्य प्रसाद का मूल मंत्र सबमें सम भाव है।

(8) षष्ठी तिथि व्रतियों के लिए पूर्ण उपवास का दिन है। इस दिन निर्जला व्रत धारण कर शाम को अस्ताचलगामी सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है।

(9) सप्तमी तिथि को उगते हुए सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर व्रती पारणा करते हैं।

(10) प्रायः देखा जाता है कि यह व्रत स्त्रियाँ अधिक करती हैं, पुरुष कम।

हमारे देश का कोणार्क मन्दिर शिल्पकला के लिए पूरे विश्व में ख्यात है। बृहत्तर बिहार यानी बिहार और झारखण्ड में सूर्य मन्दिर निम्न स्थानों में पाये जाते हैं- सूर्य मन्दिर औरंगाबाद जिले में 110 फीट ऊँचा देव नामक स्थान में विद्यमान है जो सम्भवतः 8वीं शताब्दी से भी पूर्व का माना जाता है। उमगा पहाड़ी पर का सूर्य मन्दिर भी इसी काल का कहा जाता है क्योंकि स्थापत्य, शिल्प आदि में समानता है। गया में विष्णुपद के पास एक सूर्यकुण्ड है एवं सूर्यनारायण की अति प्राचीन चतुर्भुज मूर्त्ति भी शोभायमान है। फल्गु नदी के तट पर 'गयादित्य' नामक मन्दिर है। गया जिले के शेरघाटी अनुमंडल में खुदाई से प्राप्त सूर्य मन्दिर बड़ा ही चित्ताकर्षक है। यह 5वीं शताब्दी का माना जाता है। सहरसा जिले का 'कन्दाहा' सूर्य मन्दिर 1453 ई0 का है। नालन्दा जिले में बिहार श्री(शरीफ) के पास 'बड़गाँव' का सूर्य मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। उस मन्दिर से थोड़ी दूरी पर एक विशाल तालाब है। कहा जाता है कि जिसमें स्नान करने से कोई भी चर्म रोग सद्यः नष्ट हो जाता है। जिला बाढ़ के पास 'पुनारख स्टेशन है वहाँ पुण्ड्रार्क (पुण्यार्क) देवता का अति प्राचीन भव्य मन्दिर है। 'मग' ब्राह्मणों का एक 'पुर' 'पुण्यार्क' भी इसी गाँव के नाम पर पड़ा है। शेखपुरा जिले के 'बलवापर' गाँव में सूर्य देवता का मन्दिर है जिसमें सूर्य देवता सात घोड़ों से जुते रथ पर सवार हैं। जमुई जिले में मलयपुर गाँव के पास नदी तट पर सूर्यमन्दिर है जहाँ प्रतिवर्ष माघ में सूर्यसप्तमी के दिन दूर-दूर से आकर लोग पीली धोती पहन 'आदित्यहृदय-स्तोत्र' का सस्वर पाठ करते हैं। दरभंगा जिले के लहेरियासराय के पास राघोपुरा गाँव में 9वीं शताब्दी की एक सूर्य प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह 4'6'' की है।

साम्बपुराण जिसे उपपुराण कहा जाता है, सूर्योपासना का प्राचीनतम ग्रन्थ है। 'साम्ब-पुराण' सम्पादक पं0 श्री गौरीकान्त झा, एकेडमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद में पं. भवनाथ झा द्वारा लिखित भूमिका से पता चलता है कि हेमाद्रि एवं लक्ष्मीधर के द्वारा उधृत होने के कारण यह 12 वीं शताब्दी पूर्व की रचना मानी है।

इससे पूर्व प्रकाशित साम्ब-पुराण में 84 (चौरासी) अध्याय हैं परन्तु इसके 27वें अध्याय में 1-23 तथा 85-92 तक के श्लोक ही उपलब्ध है, शेष बीच के 24-84 तक के श्लोक (कुल 61) अनुपलब्ध हैं।

यह अतिशय सौभाग्य की बात है कि पु0 श्लो0 पं0 अमरनाथ झा के पुत्र पं0 शम्भु नाथ झा एवं पं0 भवनाथ झा को इन अनुपलब्ध श्लोकों की पाण्डुलिपि इनके घर में में प्राप्त हुई। इन्होंने इसका प्रकाशन पं0 गौरीकान्त झा के सहयोग से करबाया। इसके लिए हम सनातन धर्मावलम्बियों की ओर से इन्हें कोटि-कोटि धन्यवाद एवं पाण्डुलिपि संचयन के प्रति इनके अदम्य उत्साह को साधुवाद।

यों पूर्व के अन्य अध्यायों से ही यह बात खुलकर साफ हो गई हे कि सूर्योपासक विप्र शाकद्वीप से जम्बूद्वीप भगवान् कृष्ण की प्रेरणा से उनके पुत्र साम्ब द्वारा लाये गये। साम्ब का कुष्ठ

रोग दूर हुआ और उन्होंने भगवान् सूर्य का एक विशाल मन्दिर साम्ब पुर में बनवाया। पद्म पुराण में उल्लेख है कि उक्त मन्दिर जहाँ बना उसका पुराना नाम कश्यपपुर था। वह नगर कश्यप ऋषि ने बनवाया था। बाद उसका नाम साम्बपुर पड़ा। परन्तु 1024 ई0 में जब गजनबी ने आक्रमण किया एवं अपने अधीन किया तब इसका नाम 'मुलतान' पड़ा। मुलतान में बहनेवाली नदी सरस्वती नदी की बहन चन्द्रभागा नदी थी। साम्ब पुराण में भी चन्द्रभागा नदी के तट पर ही मन्दिर बनाने की बात आई है।

साम्बपुराण के इस प्रक्षिप्त अंश से भी स्पष्ट है कि सूर्य के उपासक विप्र शाकद्वीप से आनीत होने के कारण शाकद्वीपीय कहलाये। ये कई नामों से ख्यात हैं, जिनकी व्याख्या निम्न प्रकार है-

1. मग - (आगम-शास्त्रीय व्याख्या) 'म' से मंत्र उत्पादक और 'ग' से गुरु। (पौराणिक व्याख्या)' 'म' से मार्तण्ड और 'ग' से ज्ञान।
2. भोजक- भाष्कर को भोग (नैवेद्य) चढ़ाकर भोजन करनेवाले।
3. ऋतव्रत- यज्ञों को शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न करानेवाले आचार्य।
4. याजक- यज्ञ करानेवाले को 'यज्वन' भी कहा जाता है, इसलिए 'याजक'।
5. योगेन्द्र- गिरि-कन्दराओं में ध्यानस्थ हो योग सम्पन्न करने के कारण 'योगेन्द्र'
6. मृग - मंत्र का सस्वर पाठ करने से 'मृग'।
7. भूदेव- भूमि पर श्रेष्ठ होने के कारण 'भूदेव'।
8. सेवक (सेवग)- देवताओं, अतिथियों के प्रति सेवा का भाव रखने के कारण सेवक या सेवग।
9. ग्रहविप्र- सूर्य ग्रहों में श्रेष्ठ हैं। इसके उपासक होने के कारण।

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

बृहद्बल उवाच

भगवन् विस्तराद् ब्रूहि शाकद्वीपनिवासिनाम्।
विप्राणां सम्भवं पुण्यं कर्म चैव समाश्रयम्॥२४॥

बृहद्बल ने कहा- हे भगवन्! शाकद्वीप में निवास करनेवाले ब्राह्मणों के जन्म एवं उनके आश्रित पुण्य कर्म को आप विस्तार पूर्वक मुझसे कहें।।24।।

कथं समागता हित्वा शाकद्वीपं सुशोभनम्।
कियत्कालं स्थिता ह्यत्र गताः कुत्र पुनश्च ते॥२५॥

सुन्दर शाकद्वीप को छोड़कर वे क्यों यहाँ आये, कब तक ठहरे और फिर कहाँ चले गये।।25।।

वसिष्ठ उवाच

आज्ञया देवदेवस्य साम्बो गत्वा द्विजोत्तमान्।
आनयामास सम्पूज्य प्रणतो गरुडे स्थितान्॥२६॥

वसिष्ठ ने कहा

कृष्ण की आज्ञा से विनम्र साम्ब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों के पास जाकर, उनकी पूजा कर उन्हें गरुड़ पर बैठाकर ले आये।।26।।

द्वारवत्यां समायातान् गोविन्दस्तानपूजयत्।
पाद्यार्घाचमनाद्यैश्च मधुपर्कं निवेद्य च।।२७।।

द्वारिका में आये हुए उन ब्राह्मणों को कृष्ण ने पाद्य, अर्घ आचमन आदि से पूजा की और मधुपर्क भी निवेदित किया।।27।।

स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा स्वस्थानासनसंस्थितान्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तानुवाच हरिः स्वयम्।।२८।।

उन ब्राह्मणों को आसन देकर स्वागत कर एवं कुशल पूछ कर तथा दोनों हाथ जोड़कर स्वयं भगवान् ने उन्हें कहा।।28।।

प्रसादाद् भवतां साम्बः स्वस्थो नूनं भविष्यति।
सुमेरुशृङ्गे प्रतिमा या सूर्यस्यास्ति भासुरा।।२९।।
प्रकाशयन्ती ते लोक ते भासा स्वेन भूयसा।
भवतां तु प्रभावेण विद्यया ब्रह्मवर्चसा।।३०।।
आगमिष्यति सा भानोः प्रतिमा तैजसी विभोः।
स्वयमाह रविः साम्बं युष्माकं पुण्यविस्तरम्।।३१।।

आप ब्राह्मणों की कृपा से साम्ब निश्चित स्वस्थ हो जायेंगे। सूर्य की प्रतिमा जो समेरु पर्वत की चोटी पर देदीप्यमान है, जो अपने तेज से लोकों को बार-बार प्रकाशित कर रही है, आपसब की ब्रह्म तेज युक्त विद्या के प्रभाव से महान् सूर्य देव की वह तेजमयी प्रतिमा निश्चित आयेगी। ब्राह्मणों के इस विस्तृत यश के बारे में स्वतः सूर्य ने साम्ब से कहा।।29-31।।

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे चन्द्रभागानदीतटे।
सूर्यस्यावाहनं चक्रुर्जपन्तोऽर्कं सनातनम्।।३२।।

बाद वे सभी ब्राह्मण चन्द्रभागा नदी के तट पर गये। वहाँ जाकर सनातन सूर्य का जप करते हुए ब्राह्मणों ने सूर्य का आवाहन किया।।32।।

तेषां मन्त्रप्रभावेण नद्यन्ते सलिलात्तदा।
उदतिष्ठद्रवेर्मूर्तिर्द्योतयन्ती दिशो दश।।३३।।

तब उन ब्राह्मणों के मंत्र प्रभाव से दसो दिशाओं को चमत्कृत करती हुई नदी के जल के मध्य से भगवान् सूर्य की मूर्त्ति प्रकट हुई।।33।।

तत्तेजसा जनास्तत्र स्थिताः मुद्रितलोचनाः।
असह्यं तेजसां पुञ्जं सोढुं शेकुर्न केचन।।३४।।

उस मूर्त्ति के असह्य तेज पुँज को वर्दाश्त कर सकने में वहाँ कोई समर्थ नहीं हो सका। सभी आँखे मूँद खड़े हो गये।।34।।

तुष्टुवुस्ते द्विजास्तत्र भगवन्तं दिवाकरम्।
जय देव जगन्नाथ जय विश्वप्रकाशन॥३५॥

प्रभाकर जय त्वष्टर्जय देव जगत्पते।
प्रसीद भगवंस्तेजस्त्वमेतत् संहर प्रभो॥३६॥

हे संसार के स्वामी देवता, हे संसार को प्रकाशित करने वाले, हे प्रभाकर, हे विश्वसर्जक, हे जगत्पति आपकी जय हो, ऐसा कहते हुए ब्राह्मणों ने उन्हें सन्तुष्ट किया और कहा- हे भगवान् आप प्रसन्न हों और लोकहित में अपने इस असह्य तेज को समेट लें।।35-36।।

दह्यन्ति प्राणिनः सर्वे सर्वं व्याकुलितं जगत्।
ततः स्तुतस्स भगवानभूदमृतदीधितिः॥३७॥

सभी प्राणी जल रहे हैं, समूचा संसार व्याकुल है ऐसी स्तुतिपरक प्रार्थना से भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए और अमृतदायी किरणवाले हो गये।।37।।

ततस्ते ब्राह्मणा देवं सिंहासनगतं विभुम्।
समुद्यम्यानयामास मठे काञ्चनकुट्टिमे॥३८॥

बाद वे सभी ब्राह्मण आसन पर बैठे हुए उस महान् सूर्य देवता को यत्न पूर्वक स्वर्ण जड़ित मठ में ले आये।।38।।

पूजां चक्रुश्च विधिवद् धूपदीपादिकैस्ततः।
तत्पादाम्भोजपानीयैः साम्बन्ते सिषिचुः पृथक्॥३९॥

ब्राह्मणों ने धूप, दीप आदिकों से सूर्य देवता की विधिवत् पूजा की और उनके चरण कमल के जल से उन्होंने (ब्राह्मणों ने) साम्ब को अलग से स्नान कराया।।39।।

ततो दिव्यवपुः सद्यः साम्बो विगतकल्मषः।
बभूव रुचिराङ्गश्च तदा कान्ततरोऽभवत्॥४०॥

तब साम्ब का पाप दूर हो गया और शीघ्र वे दिव्य शरीर वाले हो गये। उनके सारे अंग अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर हो गये।।40।।

बृहद्बल उवाच

नामानि वद तेषां च प्रभावो विस्तराच्छुतः।
याजकानां समुत्पत्तिं ब्रूहि विस्तरतो मुने॥४१॥

बृहद्बल ने कहा-

हे मुनि, उनके प्रभाव मैंने विस्तार से सुन लिये अब उनके पूजकों के नाम और उत्पत्ति विस्तार से कहें।।41।।

वसिष्ठ उवाच

शृणु नामानि विप्राणां पावनानि शुभानि च।
मिहिरांशुः शुभांशुश्च सुधर्मा सुमतिर्वसुः॥४२॥

वसिष्ठ उवाच-

उन विप्रों के शुभ और पवित्र नामों को सुनें- मिहिरांशु, शुभांशु, सुधर्मा, सुमति, वसु॥42॥

श्रुतकीर्तिः श्रुतायुश्च भरद्वाजः पराशरः।
कौण्डिन्यः कश्यपो गर्गो भृगुर्भव्यमतिर्नलः॥४३॥

सूर्यदत्तोऽर्कदत्तश्च कौशिकश्चेति नामतः।
ते ततः कृष्णमित्याहुः कृतकार्या वयं विभो॥४४॥

श्रुतकीर्त्ति, श्रुतायु, भरद्वाज, पराशर, कौण्डिन्य, कश्यप, गर्ग, भृगु, भव्यमति, नल, सूर्यदत्त, अर्कदत्त और कौशिक- इन नामों से ये जाने जाते हैं। बाद उन ब्राह्मणों ने कृष्ण से कहा कि हे विभु, हमसब कृतकार्य हो गये॥43-44॥

आज्ञापय हृषीकेश गन्तुं नः पुनरेव हि।
यास्यामः स्वपुरं विष्णो नेह स्थातुञ्च शस्नुमः॥४५॥

हे हृषीकेश, हमलोगों को पुनः लौट जाने की आप आज्ञा दें। हे विष्णु, हमलोग अपने नगर को जायेंगे। हमलोग यहाँ ठहरना नहीं चाहते हैं॥45॥

तानुवाच ततः कृष्णः प्रणम्य द्विजसत्तमान्।
यावत्तिष्ठाम्यहं विप्राः मर्त्यलोकेऽत्र कार्यतः॥४६॥

तावद् भवन्तस्तिष्ठन्तु पूजयन्तो दिवाकरम्।
एषा मूर्तिश्च सूर्यस्य तावत्तिष्ठति पूजिता॥४७॥

तब कृष्ण ने उन ब्राह्मण-श्रेष्ठों को प्रणाम कर कहा- हे विप्र, जबतक मैं इस मर्त्यलोक में कार्यवश हूँ तबतक आप सभी सूर्य देवता की पूजा करते हुए रहें। यह सूर्य की पूजित मूर्त्ति भी तब तक ही रहेगी॥46-47॥

नान्यस्तेजसस्तस्य विप्रः कश्चन विद्यते।
यदा त्यक्ष्यामि भूर्लोकं मूर्तिश्चैषा गमिष्यति॥४८॥

उनके तेज के समान कोई दूसरा विप्र नहीं है। जब मैं पृथ्वी लोक का परित्याग करूँगा, यह मूर्त्ति भी चली जायेगी॥48॥

तदा युष्मानयं विप्राः द्वीपान्तं प्रापयिष्यति।
ततस्तार्क्ष्यं समाहूय जगाम गरुडध्वजः॥४९॥

हे विप्र, आपलोगों को द्वीपान्त तक पहुँचा दिया जायगा। बाद गरुड़ को बुलाकर भगवान् गरुड़ध्वज चले गये॥49॥

भवानेतान् द्विजान् विप्र संस्मृतः प्रापयिष्यति।
तार्क्ष्यः प्रोवाच भगवन् प्रापयिष्याम्यहं पुनः।।५०।।

भगवान् ने गरुड़ से कहा कि आप ब्राह्मणों को इच्छित स्थान पर पहुँचा देंगे। इसपर गरुड़ बोला- मैं इन ब्राह्मणों को इच्छित स्थान पर पहुँचा दूँगा।।।50।।

किन्त्वन्तरा भुवं चैवावतरिष्यति चेन्नहि।
तदा त्यक्ष्यामि तत्रैव सत्यमेतद्भवत्विति।।५१।।

किन्तु यदि ये विप्र पृथ्वी पर कहीं उतरना चाहें तो इन्हें वहीं उतार देंगे। ऐसा ही होगा।।51।।

इत्युक्तो गरुडोऽगच्छद् यथेष्टां गतिमात्मवान्।
इति निश्चितकर्माणः स्थितास्तत्रैव याज्ञिकाः।।५२।।
पूजयन्तो विवस्वन्तं तपस्यन्तश्च योगिनः।
योगासिद्धा महात्मानो निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः।।५३।।

ऐसा कह कर गरुड़ अपनी यथेष्ट गति से चल पड़ा। नियमित कर्म करनेवाले याज्ञिक, भगवान् सूर्य की पूजा और तपस्या करते हुए योगीजन, एकमना (निर्द्वन्द्व), धन संचय की कुंठा से मुक्त (निष्परिग्रह) योगसिद्ध महात्मा वहीं ठहर गये।।52-53।।

साम्बस्तत्रैव नित्यं वै तिष्ठंस्तुष्टाव भास्करम्।
एवं स्थितानां तेषां वै त्रिंशद्वर्षाणि व्यत्ययः।।५४।।

साम्ब वहीं ठहर गये और नित्य भगवान् भास्कर की पूजा करते हुए उन्हें सन्तुष्ट किया। इस तरह वहाँ रहते हुए उनलोंगों को तीन सौ वर्ष बीत गये।।54।।

कदाचिदग्रतस्तेषां पश्यतामेव सा कला।
उड्डीयाकाशमगमद् भास्यमाना स्तवै-स्तुता।।५५।।

अनेक स्तुतियों से प्रार्थित तेजस्विनी वह कला देखते हुए उनलोगों के आगे से ऊपर उड़कर आकाश चली गई।।55।।

ते तदात्मनि वै विष्णुं गतं त्यक्त्वा भुवस्थलम्।
विषादं परमं जग्मुश्चिन्त्यमाना जनार्दनम्।।५६।।

जनार्दन भगवान् विष्णु, पृथ्वी लोक छोड़ कर चले गये हैं ऐसा जानकर वे (याक्षिक) अपने में अन्त्यन्त चिन्तित हो गये।।56।।

विष्णुना सम्परित्यक्तं भूलोकं कलिरेष्यति।
कथमत्र वयं विप्रास्तिष्ठामः कलिकल्मषे।।५७।।

भगवान् विष्णु भू-लोक छोड़कर चले गये। कलियुग आनेवाला है (आयेगा)। इस पापग्रस्त कलियुग में हम ब्राह्मण कैसे रहेंगे।।57।।

ततस्ते गरुडं दध्युः स्मरन्तः पूर्वभाषितम्।
स्मृतमात्रं तदा तत्र प्रादुरासीत् खगेश्वरः।।५८।।

इसके बाद उन विप्रों ने पूर्व कथित गरुढ़ का ध्यान किया। स्मरण मात्र से ही गरुढ़ वहाँ उपस्थित हो गया।।58।।

प्रणम्य तान् द्विजानाह क्षणाद् वः प्रापयाम्यहम्।
शाकद्वीपं किमर्थं वा विषीदन्ति द्विजोत्तमाः।।५९।।

उन ब्राह्मणों को प्रणाम कर गरुड़ ने कहा- हे बाह्मण श्रेष्ठ, आप व्यर्थ ही विषाद करते हैं, मैं क्षणभर में ही शाकद्वीप पहुँचा दूँगा।।59।।

तत आरुह्य गरुडं ययुस्ते द्विजसत्तमाः।
गच्छतो ददृशुर्मार्गे जनतां व्याकुलां भृशम्।।६०।।

उसके बाद सभी ब्राह्मण श्रेष्ठ गरुड़ पर सवार हो कर चल पड़े। रास्ते में जाते हुए उनलोगों ने एक जगह अत्यन्त व्याकुल जनता को देखा।।60।।

उचुस्ते गरुडं केऽमी रुदन्ति भृशमातुराः।
तानुवाच खगो विप्रांस्तत्र राजास्ति मागधः।।६१।।
धृष्टकेतुरिति ख्यातः स रोगं कुष्ठमाप्तवान्।
सोऽग्निं प्रवेशं कर्तुं वै स्वयमत्र समागतः।।६२।।
ततोऽमी व्याकुला लोका रुदन्ति नगरोद्भवाः।

उन्होंने गरुड़ से कहा- क्यों ये अत्यन्त व्याकुल हैं और बार-बार रो रहे हैं? गरुड़ ने उन विप्रों से कहा, वहाँ धृष्टकेतु नामक प्रसिद्ध मगध का राजा है। वह कुष्ठ रोग से ग्रसित है और वह यहाँ अग्नि में प्रवेश करने के लिए आया है। इसीलिए नगर के लोग व्याकुल होकर रो रहे हैं।।61-62।।

ब्राह्मणा ऊचुः

अत्र न ब्राह्मणा केचिद्यत्पादाम्बु पिबेन्नृपः।
परमं स्वास्थ्यमागच्छेत किं वृथाग्नौ त्यजेदसून्।।६३।।

ब्राह्मण ने कहा- यहाँ ऐसे कोई ब्राह्मण नहीं है जिनके चरणोदक का पान राजा कर सकें और वे इन्हे पूर्ण स्वस्थ कर सकें। क्यों राजा अग्नि में व्यर्थ प्राण त्याग करते हैं।।63।।

भवादृशो द्विजः कश्चिद् यदि स्यात् द्विजसत्तमाः।
शाकद्वीपात् किमर्थं वा भवदागमनं भवेत्।।६४।।
पुण्यं यशश्च विपुलं भवतां तु भविष्यति।

गरुड़ ने कहा- आपके समान यहाँ यदि कोई ब्राह्मण होते तो शाकद्वीप से आपका आना ही क्यों होता। यदि आप ठीक कर देते हैं तो आपको पुण्य एवं महान् यश होगा।।64।।

तथेति प्रतिपन्नांस्तान् खगस्तत्रावतारयत्।
राजाथ गरुडं दृष्ट्वा परमं हर्षमाप्तवान्।।६५।।

ऐसा कहकर उन सिद्ध एवं गुणज्ञ ब्राह्मणों को गरुड़ ने वहीं उतार दिया। राजा गरुड़ को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।।65।।

प्राणत्यागस्य समये गरुडो दृश्यते मया।
विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य वाहनं पुण्यवर्धनम्॥६६॥

प्राणत्याग के समय मैंने गरुड़ देखा। त्रिलोक के स्वामी भगवान् विष्णु का वाहन पुण्य को बढ़ाने वाला होता है।।66।।

प्रणम्य स्वागतं चेति हर्षाद् गरुडमब्रवीत्।
ततस्तं गरुडः प्राह किं तनुं त्यक्तुमिच्छसि॥६७॥

(राजा ने) हर्ष से प्रणाम कर और स्वागत कर गरुड़ से कहा। बाद गरुड़ ने राजा से (तम्) कहा, क्यों शरीर त्याग करना चाहते हो।।67।।

ब्राह्मणानाममीषां च पिबस्व चरणोदकम्।
विमुक्तोऽस्माद्रुजस्तूर्णं परं स्वास्थ्यमवाप्स्यसे॥६८॥

(तुम) इन ब्राह्मणों के चरणोदक का पान करो। शीघ्र इस रोग से मुक्त हो जाओगे और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त हो जायेगा।।68।।

ततः स राजा तान् विप्रान् शिरसा प्रणनाम ह।
उवाच प्राञ्जलिर्धन्यो ह्यहं जातोऽस्मि साम्प्रतम्॥६९॥

बाद राजा ने उन ब्राह्मणों को सिर झुका कर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा, मैं इस समय धन्य हो गया।।69।।

वसिष्ठ उवाच

ततोऽस्मिन् मिहिरांशुः स्वं प्रादाद् वै चरणोदकम्।
पपौ च तं नृपस्तूर्णं जातश्च विमलद्युतिः॥७०॥

वसिष्ठ ने कहा- इसी समय सूर्य के समान तेज वाले उन ब्राह्मणों ने प्रसन्नता पूर्वक चरणोदक दिये। राजा ने चरणोदक पान किया और वह शीघ्र कान्तिमान हो गया। (नीरोग हो गया)।।70।।

विरजस्कं क्षणाद्भूपं दृष्ट्वा लोकाः प्रशंसिरे।
तुष्टुवुश्च द्विजान् हर्षात् प्रणम्य शिरसा मुहुः॥७१॥

क्षणभर में ही राजा के साफ-सुथरे रूप को देखकर लोगों ने प्रशंसा की। राजा ने हर्ष से बार-बार नतमस्तक हो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया।।71।।

राजा च प्रणतः प्राह भवन्तो ब्राह्मणाः समाः।
पुण्यात्मानः शुभाचाराः जगत्पावनपावनाः॥७२॥
दासभावं गतोऽस्म्यद्य युस्माकं मुनिसत्तमाः।
आज्ञापयध्वं मे राज्यं सर्वं वा भवतामपि॥७३॥

राजा ने प्रणत हो कर ब्राह्मणों से कहा, (मुनि श्रेष्ठ), पुण्यात्मा, उत्तम आचार-विचार वाले, संसार को पवित्र करनेवाले, मुनि सत्तम (मुनि श्रेष्ठ) आपसबों का आज मैं दास हो चुका हूँ। आज्ञा कीजिए, मेरा सारा राज्य आपका ही है।।72-73।।

ते ततस्तु नृपं प्रोचुः साधु सर्वं सुभाषितम्।

धर्मेण पालयन् लोकान् कुरु राज्यमकण्टकम्।।७४।।

उन ब्राह्मणों ने राजा से कहा, आपकी सारी बातें सुन्दर हैं। आप धर्मपूर्वक लोगों का पालन-पाषण करें और राज्य को निष्कण्टक करें।।74।।

अस्माकमाज्ञया राजन् सूर्यस्य प्रतिमामिह।

स्थापयस्व विधानेन तस्याः पूजापरो भव।।७५।।

हे राजन! हमसबों की आज्ञा से आप यहाँ विधानपूर्वक सूर्य प्रतिमा की स्थापना करें और उनकी पूजा में मग्न हो जायें।।75।।

भक्तिः सूर्ये सदा कार्य्या त्वया मागधसत्तम।

सूर्ये सम्पूजिते देवे सर्वे स्युः पूजितास्त्वया।।७६।।

हे मागधश्रेष्ठ! आपको सदा सूर्य की भक्ति करनी चाहिये। सूर्य देवता की पूजा कर लेने पर सभी देवता पूजित समझे जाते हैं।।76।।

आज्ञापय वयं यामः शाकद्वीपमतः परम्।
तान् गन्तुकामानभ्येत्य गरुडः प्राह याज्ञिकान्।।७७।।

तिष्ठध्वं यूयमत्रैव समयं स्मरतः स्वकम्।
आज्ञा चैवास्ति कृष्णस्य स्थातुं युष्माकमत्र वै।।७८।।

प्रतिज्ञा या कृता पूर्वं सा न त्याज्याभवादृशैः।
गरुड़स्तांस्ततो नत्वा ययौ तूर्णं विहायसा।।७९।।

आप आज्ञा दें। इसके बाद हमलोग शाकद्वीप जाना चाहते हैं। उन याज्ञिकों को जाने का इच्छुक समझकर गरुड़ ने कहा- 'आपलोगों को स्वयं समय का स्मरण करते हुए यहाँ ठहरना चाहिये। वस्तुतः कृष्ण की भी आज्ञा है कि आप सभी यहाँ ही ठहरें। आप जैसे लोग अपनी पूर्व की गई प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ते हैं।' ऐसा कहकर गरुड़ उनसब को प्रणाम कर आकाश मार्ग से तेज गति से चल पड़ा।।77-79।।

वसिष्ठ उवाच

ते विषादं परं जग्मुः वञ्चिताः स्मः पतत्रिणा।

न स्थेयमत्र चास्माभिः कथं भूप व्रजामहे।।८०।।

वसिष्ठ ने कहा- वे सभी गरुड़ से अपने को ठगा हुआ समक्ष कर अत्यन्त विषाद-ग्रसित हो गये। हमलोगों को यहाँ नहीं ठहरना चाहिये, हे राजा, हमलोग कैसे जायें?।।80।।

इति तान् व्याकुलान् दृष्ट्वा व्यासाद्याः मुनयस्तदा।

समागत्य शनैरेतां सान्त्वयामासुरादृताः।।८१।।

तब व्यास आदि मुनि उनसब को अत्यन्त व्याकुल देखकर धीरे से वहाँ आये और सान्त्वना दी।।81।।

मा विषीदत भो विप्राः स्थेयमत्र मुमुक्षुभिः।
पुण्यो भरतखण्डोऽयं सिद्धिं नूनमवाप्स्यथ॥८२॥

हे ब्राह्मण! आपलोग दुखी न हों, मुक्ति चाहनेवाले लोगों को यहाँ ठहरना चाहिये। यह पुण्यमय भरतखण्ड है, आपलोगों को यहाँ निश्चित सिद्धि मिलेगी।।82।।

पावनार्थं पृथिव्यां वा ध्रुवं स्थास्यति सन्ततिः।
राजा च प्रणतो भूत्वा तानुवाच कृताञ्जलिः॥८३॥

पवित्र करने के लिए पृथ्वी पर निश्चित सन्तति रहेगी। राजा ने होकर, हाथ जोड़कर उन ब्राह्मणों से कहा।।83।।

लोकानां पावनार्थाय यूयमत्र समागताः।
ग्रामान् वः प्रतिदास्यामि भागीरथ्यास्तटे शुभे॥८४॥

आपसब का आगमन यहाँ संसार को (मनुष्यों को) पवित्र करने के लिये हुआ है। पवित्र (शुभ) गंगा के किनारे आप सबको गाँव दूँगा।।84।।

इस प्रक्षिप्त अंश का ऐतिहासिक महत्त्व देखते हुए सुधी पाठकों के लिए प्रकाशित किया गया।

❑

सब दुःखों की जड़ - तृष्णा

''प्रमादरत मनुष्य की 'तण्हा' (तृष्णा) की भाँति बढ़ती ही जाती है। वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु प्राप्त करने की होड़ में जीवन यापन करता है- चंचल इतना कि एक दबता है, तो दूसरा उठता है और उसका मन इतना चंचल कि वह मँझधार का जीवन जीता है। यह तृष्णा जिसे जकड़ लेती है, उसे शोकग्रस्त कर जीवन को प्रायः क्षत-विक्षत कर देती है। इस दुर्जेय तृष्णा पर जो इस जगत् में काबू पा लेता है, उसका शोक इस प्रकार झड़ जाता है जिस प्रकार कमल के पत्ते पर जल के बिन्दु। जैसे जड़ के पुष्ट होने के कारण कटा हुआ वृक्ष फिर से उग आता है, वैसे ही जबतक तृष्णा की जड़ न कटे, तब तक दुःख बराबर पैदा होता रहेगा। राग युक्त संकल्प के श्रोत चारो ओर बह रहे हैं जिसके कारण तृष्णा रुपी लता अकुंरित होती रहती है और जड़ पकड़ती रहती है। जहाँ कीं भी तुम यह लता पकड़ती हुई देखा, वहीं प्रज्ञा की कुल्हाड़ी से उसकी जड़ काट डालो। प्रज्ञा, शील समाधिस्थ (स्थितप्रज्ञ) जीवन संपन्न कर अच्छे और नीति मार्ग पर प्रतिक्षण चल कर अच्छे काम करते रहने से मन की वृति चंचल नहीं होता, भटकता नहीं- तृष्णा का भी नाश स्वतः होता रहता है''- भगवान बुद्ध की वाणी।

डा. एस. एन.पी. सिन्हा के सौजन्य से

बिहार के पर्यटन-विकास में हिन्दू-विरासत की भूमिका

❑आचार्य किशोर कुणाल

ऋग्वेद

भारतीय संस्कृति की स्थापना एवं उत्थान में बिहार की भूमिका अनन्य एवं अनुपम रही है। बहुत कम लोगों को यह ज्ञात है कि संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'ॐ अग्निमीडे पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विज होतारं रत्नधातमम्' की रचना बिहार के सिद्धाश्रम में विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा द्वारा हुई और वैदिक मन्त्रों में सर्वप्रमुख गायत्री मन्त्र के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र ही हैं। इसी प्रकार, अंगदेश में दीर्घतमा और उनके पुत्र कक्षीवान् ने ऋग्वेद के वायुसूक्त की रचना की थी। बक्सर के पास सिद्धाश्रम था जहाँ विष्णु भगवान् ने वामनावतार के पूर्व साधना की थी और यहीं विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए लाये थे। बक्सर बिहार की विरासत का प्रवेश द्वार है और साधना का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र है। यदि बक्सर में हिन्दू विरासत का समग्र विकास किया जाता है, तो बिहार में पर्यटन की असीम सम्भवनाएँ हो सकती हैं।

पाँच शाखाएँ

परम्परा से हिन्दू धर्म मुख्यत: पाँच शाखाओं में विभक्त माना जाता रहा है- (क) वैष्णव (ख) शैव (ग) शाक्त (घ) सौर और (ङ) गाणपत्य।

सिद्धाश्रम

वैष्णव शाखा में बिहार भगवान् श्रीराम से सबसे अधिक जुड़ा रहा है। भगवान् श्रीराम का आविर्भाव भले ही अयोध्या में हुआ हो और शास्त्रों की शिक्षा गुरु वसिष्ठ से मिली हो; किन्तु शस्त्रों की दीक्षा और उसका प्रशिक्षण बिहार के सिद्धाश्रम में ही उन्हें महर्षि विश्वामित्र से मिला। यहीं उन्होंने ताडका और सुबाहु का वध किया और मारीच को भविष्य की लीला के लिए शर-प्रहार कर शत-योजन समुद्र-तट पर फेंका और आठ दिनों तक वहाँ रहकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की।

विशाला और मिथिला

उसके बाद वे महर्षि विश्वामित्र और लक्ष्मण के साथ महर्षि के निर्देशानुसार सिद्धाश्रम से चलकर शोण नदी के तट पर विश्राम किया। पुन: पैदल चलकर गंगा एवं शोण के संगम-स्थल पर विश्राम किया। गंगा नाव से पारकर विशाला नगरी में ठहरे जहाँ वहाँ के राजा सुमति ने उनका स्वागत किया। आगे चलकर मिथिला पहुँचे जहाँ आज के अहियारी ग्राम में उन्होंने शापित अहल्या का उद्धार किया और आगे चलकर मिथिला की राजधानी जनकपुर पहुँचे। भले ही जनकपुर आज नेपाल में पड़ता हो, किन्तु उस समय उसकी पहचान मिथिला के नरेश विदेह जनक की राजधानी के रूप में थी। श्रीराम के अयोध्या से जनकपुर तक जाने की यात्रा एवं मार्ग-विश्राम का विशद वर्णन वाल्मीकि रामायण में है। जनकपुर में धनुष्-विध्वंस एवं

जानकी से विवाह के बाद बारात के लौटने की यात्रा का मार्ग एवं पड़ाव का उल्लेख नहीं है। वहाँ केवल इतना ही उल्लेख है कि जनकपुर से अयोध्या की यात्रा तीन दिनों की थी, किन्तु भौगोलिक दृष्टि से निर्धारित इसी वापसी-यात्रा के मार्ग में बहुआरा (केसरिया के पास) महावीर मन्दिर संसार का विशालतम 'विराट् रामायण मन्दिर' बना रहा है।

सीतामाता

भगवान् श्रीराम की भार्या जगज्जननी जानकी का उद्भव सीतामढ़ी में हुआ था। सीतामढ़ी में जानकीस्थान एवं पुनौराधाम उनके प्राकट्य-स्थल के रूप में विख्यात हैं। सीताजी के बारे में स्वामी विवेकानन्द के ये उद्गार हैं-

"You may exhaust the literature of the world that is past, and I may assure you that you will have to exhaust the literature of the world of the future, before finding another Sita."

भगवान् श्रीराम का सम्बन्ध बिहार में गया, मुंगेर आदि स्थलों से जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि वे वनवास-क्रम में वे इधर आये थे। यह भ्रान्तिमूलक है। कैकेयी ने दण्डकारण्य में उनका वनवास माँगा था; अतः वे अयोध्या से चलकर शृंगवेरपुर, चित्रकूट होते हुए दण्डकारण्य गये जहाँ पंचवटी में उन्होंने अपना अधिकांश समय बिताया। हाँ, राज्याभिषेक के बाद वे पितृ-श्राद्ध के सिलसिले में गया, मुंगेर आये थे और इसी क्रम में वे गंगा पार करके शृंगी ऋषि के आश्रम (सिंहेश्वर स्थान) तक गये होंगे। ऋषि शृंगी ने ही तो पुत्रेष्टि यज्ञ का सम्पादन किया था जिससे चारों भ्राताओं का आविर्भाव हुआ था। इस प्रकार श्रीराम के जीवन में बिहार का बड़ा महत्त्व है और उनसे जुड़े स्थानों का यदि विकास किया जाता है, तो पर्यटकों की संख्या में काफी वृद्धि होगी।

अन्य स्थल

बिहार में भगवान् विष्णु के भी अनेक स्थान जुड़े हुए हैं। किन्तु यहाँ तीन प्रमुख स्थानों का उल्लेख किया जा रहा है। गया में विष्णुपद मन्दिर जहाँ संसार के सभी हिन्दुओं की अभिलाषा होती है कि अपने पितरों का अन्तिम श्राद्ध कर उन्हें जन्म-मरण के चक्र से मोक्ष दिलायें। दूसरा स्थान है- नवादा जिले में अफसदगढ़ जहाँ उत्तर गुप्तकाल के प्रतापी राजा आदित्यसेन ने विष्णु-मन्दिर बनाया था और तीसरा है बरबीघा के पास सामस जहाँ विष्णु भगवान् की ऐसी प्रतिमा मिली है जो तिरुपति के बालाजी भगवान् की शैली में; किन्तु उनसे भी बढ़ी है। काले ग्रेनाइट में बनी यह मूर्त्ति शंख, चक्र, गदा और पद्म के साथ सुशोभित है। इसका विकास करने से धार्मिक पर्यटन की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जायेगी। यद्यपि बिहार वामनावतार, नृसिंहावतार एवं समुद्र-मन्थन की कथाओं से जुड़ा हुआ है।

वैष्णव-मन्दिर

गोपालगंज जिले के मीरगंज थाने में कोयलादेवा में राधाकृष्ण मन्दिर प्रसिद्ध कृष्ण-मन्दिर के रूप में पूरे उत्तर भारत में विख्यात है।

बिहार शैवभक्ति का भी सशक्त केन्द्र रहा है। देवघर में स्थित वैद्यनाथधाम यद्यपि झारखण्ड में चला गया है, किन्तु भागलपुर जिला के सुल्तानगंज में अजगवीनाथ मन्दिर की गंगा से लेकर वैद्यनाथधाम तक सावन में प्रतिदिन लाखों भक्तों के निरन्तर प्रयाण का जो पावन, प्रेरक दृश्य दीखता है, वह अद्भुत, अनुपम है। उसका सर्वतोमुखी विकास अपेक्षित है, ताकि भक्तों को अधिकाधिक सुविधा मिल सके।

अजगवीनाथ मन्दिर

किन्तु बिहार को यह गौरव प्राप्त है कि देश का प्राचीनतम उल्लिखित मन्दिर, जहाँ शताब्दियों से पूजा निरन्तर चलती आयी है, कैमूरी पहाड़ी पर भभुआ के पास अवस्थित है। आज यह मुण्डेश्वरी मन्दिर के नाम से ज्ञात है; किन्तु वहाँ मन्दिर के केन्द्र में जो शिवलिङ्ग स्थित है, उसकी पूजा-अर्चना और अखण्डदीप-दान के लिए 108 ई० में दण्डनायक गोमिभट ने 500 सुवर्ण मुद्राएँ दी थीं। वहाँ इस तथ्य का उल्लेख 1892 ई० में प्राप्त बहुचर्चित मुण्डेश्वरी शिलालेख में मिला है जो इसकी सर्वाधिक प्राचीनता का प्रमाण है।

कैमूर के मण्डलेश्वर शिव
18वीं शती के अन्त में विलियम डैनियल द्वारा बनाया गया चित्र

अन्य प्राचीन शिव-मन्दिर में अरेराज का सोमेश्वर नाथ, मिथिला के कुशेश्वर स्थान एवं कपिलेश्वर स्थान, सिंहेश्वर स्थान, बैकठपुर के गौरीशंकर मन्दिर, रोहतास के गुप्ताधाम, सोनपुर के हरिहरनाथ तथा गया जिले के मैन ग्राम में स्थित शिव-मन्दिरों की प्रमुखता है। मुजफ्फरपुर शहर में स्थित गरीबनाथ मन्दिर में अब सावन में सबसे अधिक जल चढ़ने लगा है। शिवलिंग की विशालता एवं मन्दिर की भव्यता में लखीसराय के पास स्थित अशोकधाम बिहार में अत्यन्त भव्य शिव मन्दिर है। इन सब स्थानों का विकास करने से पर्यटन की सम्भावनाएँ बढ़ती जायेंगी।

शाक्त-स्थल

मिथिला क्षेत्र शक्ति-पूजा का बड़ा केन्द्र रहा है। इस क्षेत्र में सहरसा के पास महिषी में स्थित भगवती उग्रतारा मण्डन मिश्र का धाम होने के कारण अतिशय विख्यात है। मधुबनी जिला में उच्चैठ में स्थित काली-मन्दिर, दरभंगा में स्थित श्यामा मन्दिर, बेतियाराज का काली मन्दिर, गोपालगंज के पास स्थित थावे का दुर्गा मन्दिर, पटना की बड़ी और छोटी पटन देवी, सासाराम के पास ताराचण्डी, कैमूर पहाड़ पर स्थित मुण्डेश्वरी मन्दिर कुछ ऐसे मन्दिर हैं जो ख्याति एवं माहात्म्य में देश के किसी मन्दिर की बराबरी कर सकते हैं। भोजपुर की बखोरापुरवाली काली मन्दिर की भी लोकप्रियता सुप्रबन्धन के कारण बढ़ती जा रही है। यदि मुण्डेश्वरी मन्दिर का शिखर स्थापित कर दिया जाये और रज्जु मार्ग की व्यवस्था कर दी जाये, तो इसमें वैष्णों देवी के समान भक्तों को आकर्षित करने की क्षमता है। पर्यटन विभाग को इसके लिए तुरत कार्रवाई करनी होगी।

सौर-उपासना

बिहार में सौर-उपासना प्रारम्भ से ही अत्यन्त प्रचलित रही है। बिहार में दृष्ट गायत्री मन्त्र भगवान् सूर्य की ही उपासना है। छठ-व्रत भी भगवान् सूर्य की वही पूजा-अर्चना है, जो देश के व्रत-त्योहारों में सबसे अद्‌भुत है और जिसकी अमिट छाप अब हर भारतीय पर पड़ रही है। देव का सूर्य-मन्दिर देश के सबसे प्राचीन सूर्य मन्दिरों में एक है। पत्थरों से निर्मित यह मन्दिर अपनी भव्यता में बेजोड़ है। इस स्थान का विकास एवं क्षेत्र से नक्सलवाद का उन्मूलन पर्यटकों को आकृष्ट करेगा। अन्य सूर्य-मन्दिरों में ये प्रमुख हैं- पण्डारक के पुण्यार्क सूर्य मन्दिर, उलार में स्थित उलार्क सूर्यमन्दिर, उमगा स्थित सूर्यमन्दिर, गया स्थित दक्षिणार्क सूर्य

मन्दिर, सहरसा जिले में कंदाहा सूर्य मन्दिर, पूर्णिया जिले में कसवा स्थित सूर्यमन्दिर, मधुबनी जिले में वरुआर, भोजपड़ौल एवं परसा के सूर्य मन्दिर आदि। भोजपुर जिले के देव-वरुणार्क में आदित सेन के पिता माध वगुप्त के काल के शिलालेख एवं मन्दिर मिलते हैं और उनमें उस युग की बनी हुई बहुत सारी मूर्तियों अभी भी विद्यमान हैं। कला एवं संस्कृति विभाग का विशेष दायित्व बनता है कि वह इन्हें सुरक्षित करे।

गणपति

बिहार में गाणपत्य शाखा बहुत प्रचलित नहीं रही है। किन्तु हर पूजा के प्रारम्भ में गणेशजी की पूजा होने के कारण उनकी अर्चना हर घर में होती है। बिहार में गणपतिजी की जो कुछ विशाल मूर्तियाँ दीखती हैं, वे हैं मुण्डेश्वरी मन्दिर के पैदल मार्ग में, गया में पटना की ओर से प्रवेश करते हुए एक मन्दिर में तथा बेतियाराज के काली मन्दिर परिसर में। फिर भी, केवल गणेशजी के स्वतन्त्र मन्दिर कम हैं, यद्यपि अधिकतर मन्दिरों में गणेशजी विराजमान हैं।

हनुमानजी

यद्यपि बिहार में गाणपत्य पूजन की स्वतन्त्र परम्परा कम है, किन्तु हनुमानजी की स्वतन्त्र पूजन-परम्परा ने एक नयी शाखा का जन्म दिया है। पटना का महावीर मन्दिर देश के सर्वश्रेष्ठ मन्दिरों में माहात्म्य एवं प्रबन्धन की दृष्टि से परिगणित होता है। अब तो फिल्मी सितारे भी अपनी फिल्मों की सफलता के लिए यहाँ मनौती मानने आ रहे हैं और यह 'मन:कामना पूर्त्ति मन्दिर' के रूप में विख्यात हो रहा है। अभी बिहार में शायद सबसे अधिक हनुमान मन्दिरों का निर्माण हो रहा है।

रामानन्द सम्प्रदाय

संख्या की दृष्टि से राम-लक्ष्मण-जानकी के मन्दिरों की संख्या इस अर्थ में सर्वाधिक है कि इन मन्दिरों को सबसे अधिक भूमि-सम्पत्ति समर्पित की गयी। ये सब मन्दिर रामानन्द सम्प्रदाय के मन्दिर हैं और जितनी सम्पत्ति राम-मन्दिरों को बिहार में सौंपी गयी, उतनी किसी भी प्रदेश में नहीं। किन्तु सुप्रबन्धन के अभाव में अधिकांश मन्दिरों की दुर्दशा अभी चल रही है। राम-मन्दिरों से अष्टधातु की मूर्तियों की बहुधा चोरी भी इसका मुख्य कारण है। समस्तीपुर के नरधोधी में स्थित राम-जानकी मन्दिर की भव्यता किसी भी भक्त को चकित करती है।

बिहार में कबीर पन्थी मठों की संख्या भी बहुत अधिक है। यहाँ चार आचार्य-पीठ हैं- ध नौती, फतुआ, बिदुपुर और रोसड़ा। किन्तु रोसड़ा को छोड़कर शेष सब की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। एक समय था जब सन्तोषी माता के बहुत सारे मन्दिर बने थे। अभी धड़ल्ले से साईं मन्दिरों का निर्माण हो रहा है। इन मन्दिरों में स्थानीय भक्त काफी संख्या में जाते हैं; किन्तु जब बाहर से भी भक्त आना प्रारम्भ करेंगे; तब पर्यटन की दृष्टि से उसका महत्त्व बढ़ेगा।

आज बिहार में हर मन्दिर-मठ को पर्यटन-स्थल घोषित करने-कराने की होड़ है; किन्तु ऐसा करने से पर्यटकों की संख्या में बहुत वृद्धि नहीं होगी। ऐसा तब होगा, जब कुछ देवस्थलों को इतनी सुविधा दी जाये के वे तिरुपति, शिरडी, वैष्णो देवी आदि की तरह पूरे देश एवं विदेशों से भक्तों को आकृष्ट करने में सक्षम हो सकें। इसके लिए पर्यटन विभाग को विशिष्ट योजना बनानी होगी। महावीर मन्दिर न्यास केसरिया के पास संसार का विशालतम मन्दिर बनाकर इसी दिशा में कार्य कर रहा है।

❖

जयशंकर प्रसाद की कामायनी के श्रद्धा-मनु एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन

❑प्रो० (डॉ०) अशोक कुमार 'अंशुमाली'

पौरस्त्य एवं पाश्चात्त्य- दोनों ही ध्रुवों के काव्याचार्यों ने अपनी भिन्न देशीय भाषाओं में क्रमशः छायावाद एवं रोमाण्टिसिज्म- सरीखे साहित्य शास्त्रीय पदों द्वारा जिस काव्य- सिद्धान्त एवं तत्सम्बन्धी काव्य- दर्शन की परिभाषा प्रस्तुत की है वह अपने परिपार्श्व में प्रभूत कल्पना, अकूत संवेदना एवं अभूतपूर्व अवसाद के क्षणों का संवाहक है- ऐसा कहना समीचीन सिद्ध होगा। यदि प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में चेतना का आभास छायावाद है और उस चेतना में एक अव्यक्त एवं अदृश्य किन्तु विश्वव्यापिनी सता की अनुभूति रहस्यवाद है, तो उपर्युक्त सिद्धान्त की सन्धिभित्ति पर महाकवि जयशंकर प्रसाद की कालजयी रचना 'कामायनी' का आधार फलक अत्यन्त सटीक बैठता है; 'कामायनी' के विवेचन-विश्लेषण से यह स्वयमेव प्रकट हो जाता है।

> यद्यपि आलेख का विषय अत्यन्त गंभीर है और यह लम्बे लेखन की आवश्यकता महसूस करता है, तथापि डॉ. अंशुमाली ने कम शब्दों में ही इसे बाँधकर अपनी अद्‌भुत लेखन-शक्ति अपूर्व कमाल दिखाया है। पौरस्त्य और पाश्चात्त्य विद्वानों के विचारों को अपनी दृष्टि में रखते हुए कामायनी के श्रद्धा-मनु एवं उसमें वर्णित प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत आलेख का विषय है। समासतः गागर में सागर इसकी विशेषता है।

हमारी पौरस्त्य संस्कृति में महान् रचना की शुरूआत आशा एवं उल्लास के वातावरण में होती रही है परन्तु भागवत पुराण तथा कामायनी जैसे भारतीय ग्रन्थों का आरंभ क्रमशः आसन्न मृत्यु एवं अवसादपूर्ण संवेदना से देखा जाता है। जयशंकर प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य के चारण होने के साथ ही युगीन विषमताओं में समरसता के सन्देशवाहक हैं। स्वयं दुःख और वेदना, उपहास और कटुता के गरल का पान कर संसार को पीयूषदान करने में प्रसादजी ने किंचित् संकोच नहीं किया है। सुँधनी साहू परिवार की आर्थिक समृद्धि एवं धार्मिक पृष्ठभूमि ने महाकवि को बाल्यावस्था से ही विविध तीर्थस्थलों के दर्शन-भ्रमण का सौभाग्य प्रदान किया, जो कालान्तर में उनके कवि-मानस में प्राकृतिक सुषुमा के मधुर चितवन के साथ ही कल्पना और सौन्दर्य का बीजारोपण कर दिया। काशी की शैव पृष्ठभूमि में लिखित कामायनी, मेरी दृष्टि में, उन्हीं बीजों का विकसित स्वरूप है, प्रेम और सौन्दर्य, करुणा और अवसाद का सुखान्तक अमर कोष है, हृदय और मस्तिष्क, भाव और विचार, मन और बुद्धि का समरस समायोजन है। मनु और श्रद्धा यद्यपि सांख्यशास्त्र की शब्दावली में पुरुष और प्रकृति के आदि प्रतिबिम्ब हैं तथापि उनकी पाञ्चभौतिक काया उन सारे मानवीय व्यवहारों का संवहन करती है जो एक साधारण मनुष्य से अपेक्षित है। द्रष्टव्य है-

उधर सोम का पात्र लिए मनु,
समय देखकर बोले,

श्रद्धे! पी लो इसे बुद्धि के
बन्धन को जो खोले।
वही करूँगा जो कहती हो सत्य,
अकेला सुख क्या?
यह मनुहार! रुकेगा प्याला पीने से
फिर मुख क्या? - कर्म सर्ग

मानव हृदय के भिन्न-भिन्न भावों को समझने और परखने में सौन्दर्य और माधुर्य के उपासक महाकवि जयशंकर प्रसाद जितने दक्ष हैं उतने ही वह प्रकृति के बाह्य एवं आभ्यन्तर रहस्यों को परखने तथा दार्शनिक शब्दावली में उसका तदनुरूप उद्घाटन करने में समर्थ व सक्षम हैं। बाह्य प्रकृति के दृश्यों को प्रसादजी ने अपने सूक्ष्म अवलोकन का विषय बनाया है तथा यथार्थता से मण्डित ये वर्णन-चित्र सहृदय पाठकों को ही नहीं वरन् सामान्य पाठकों को भी अपनी ओर बलात् खींचते हैं। कामायनी में प्रकृति उभय रूप में चित्रित है- आलम्बन और उद्दीपन में। आलम्बन रूप में प्रकृति स्वयं ही वर्णित रहती है तथा उद्दीपन रूप में उसका मानव-जीवन पर प्रभाव वर्णित रहता है। कामायनीकार की प्रकृति की निरीक्षण-शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी है:-

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठे शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।

वेदों से लेकर पुराणों में आख्यायित जल-प्लावन सृष्टि की चक्रीय व्यवस्था का एक अवसान बिन्दु है जहाँ से सृष्टि के पुनर्सृजन एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का एक अभिनव संस्करण शुरू होता है। मनु चाहे वैवस्वत हों चाहे सावर्णि- मानव वंश के आदिपुरुष के रूप में उनकी परिकल्पना सर्वत्र समान रूप से उपलब्ध है। श्रद्धा किंचित् नाम भेद से आदि प्रकृति के रूप में वेदों से लेकर पुराणों तक में समान भाव से समादृत व सम्पूजित है। भिन्न मन्वन्तरों के कथानक का आधार चाहे जो भी हो, घटना-क्रम के विश्लेषण से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि देव और दानव संस्कृति से भिन्न मानव-संस्कृति के पुनरुत्थान में मनु और श्रद्धा का समवाय व संयोग एक अभिनव अध्याय का मार्ग प्रशस्त करता है। इस अवसर पर ईड़ा के अस्तित्व विषयक विवाद का भी सार्थक समाधान प्रतीकात्मक भाव से इस रूप में है कि मनु द्वारा आयोजित यज्ञ-कुण्ड में डाली गयी घृत-दधि आदि की आहुतियों से ईड़ा उत्पन्न है यह वह मनु की बौद्धिक सृष्टि है न कि श्रद्धा की भाँति नैसर्गिक- अतएव श्रद्धा का निसर्गजात गुण निश्चय ही ईड़ा के व्यावसायिक बौद्धिक गुणों से सर्वथा न्यारा है।

हालाँकि, इस सन्दर्भ में पाश्चात्त्य साहित्य के कुछ दृष्टान्त उद्धरणीय हैं जो मानव जीवन की सन्तुलित पूर्णता की खोज में अद्भुत दृष्टान्त हैं। अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि अलेक्जेण्डर पोप अपनी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'द रेप ऑफ द लॉक' में नायक बैरेन की जीवन-यात्रा को तबतक ठोस आधार नहीं मिलता है जबतक वह बेलिण्डा जैसी लोकोन्मुखी नायिका के साथ-साथ क्लैरिसा जैसी विचारोन्मुखी नायिका सहयोग नहीं करती है। प्रसिद्ध उपन्यासकार डी. एच. लॉरेन्स के बहुचर्चित उपन्यास 'सन्स्ज एण्ड लवर्स' है। नायक पॉल की मन:स्थिति तबतक सन्तुलन नहीं प्राप्त करती है जबतक वह क्लारा और मिरियम का समान सहयोग व समर्थन नहीं पाता है। क्लारा जहाँ भौतिक सुख-सुविधाओं तथा ऐहिक विलासिता की प्रतीक है, वहीं मिरियम आध्यात्मिक व दैवीय विचारों से ओत-प्रोत है। दोनों ही जीवन-यात्रा के लिए नायक के जीवन में अकेले सक्षम नहीं हैं- दोनों ही का समन्वय जीवन की धुरी को

सही दिशा में प्रवृत्त करता है। यह कुछ वैसा ही है जैसा कि कामायनी में श्रद्धा और ईड़ा, हृदय और बुद्धि, दोनों का सहयोग व समन्वय ही मानव वंश के आदिपुरुष मनु को सारस्वत प्रदेश की पूरी प्रजा के साथ आनन्दलोक की यात्रा में सफल बनाता है। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक धरातल पर यदि विचार करें तो यह सनातन सत्य स्वतः प्रकट हो जाता है कि ज्ञान के प्रतीक मनु, इच्छा के प्रतीक श्रद्धा और क्रिया के प्रतीक ईड़ा जबतक भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर उन्मुख हैं तबतक जीवन में नैराश्य के घटाटोप घिरे रहने की आशंका बनी रहती है; इनका परस्पर समन्वय व समाहार ही जीवन-यात्रा के सुखद अवसान का कारक है। द्रष्टव्य है:

ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सकें
यह विडम्बना है जीवन की।

-रहस्य सर्ग

फिर, इन तीनों के एकीकरण का सुपरिणाम देखें-

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो इच्छा
क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर-निनाद में श्रद्धायुत
मनु बस तन्मय थे।

-रहस्य सर्ग

प्रकृति और पुरुष का परस्पर आकर्षण चिरन्तन सत्य है; सृष्टि की प्रक्रिया का मूलाधार है-

चिरमिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन,
निजशक्ति तरंगायित था
आनन्द अम्बुनिधि शोभन।

जड़ और चेतन के भेदाभेद के भाव का जहाँ समापन हो जाता है; वहाँ सभी प्रकृति के सामरस्य में समाहित हो जाते हैं-

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।

-आनन्द सर्ग

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि प्रकृति और पुरुष का चिर मिलन तो नैसर्गिक और स्वाभाविक सत्य है, किन्तु, यह शाश्वत आकर्षण मनोवैज्ञानिक धरातल पर यथावसर उत्सव और आनन्द में अवसाद का भी मिश्रण करता है जो ईड़ा-जनित बुद्धि के साधन व समुचित सदुपयोग से जीवन की दुराशा और निराशा पर अंकुश रखता है। हाँ, यदि ईड़ाजनित बुद्धिवाद निरंकुश हो गया तो इसका दुष्परिणाम इतना भयानक और आत्मघाती होगा कि सम्पूर्ण सृष्टि पुनः जल-प्लावन की पूर्व स्थिति में आ जायेगी, उत्सव और आनन्द में अवसाद की जगह अवसादपूर्ण अवसान में उत्सव और आनन्द का लेश मात्र भी नहीं बचेगा; और मानव-जाति एक बार फिर मनु की तरह ही जल प्रलय अथवा सृष्टि-नाश की महा विभीषिका से नहीं बच सकेगी।

यंत्राश्रित सभ्यता में भौतिक आपाधापी तथा निरन्तर बढ़ रहे तुमुल कोलाहल एवं प्रतिस्पर्द्धा की भावना ने मानव-जीवन को इतना विवश और लाचार बना दिया है कि इसकी परिणति महाविनाश के अतिक्ति कुछ और में नहीं दीखती। रक्त पात, हत्याकाण्ड एवं अग्निकाण्ड के उपकरण जुटाने में सतत व्यस्त यह मानव समाज अन्ततः मानवता को किस ओर अग्रसर करेगा; वस्तुतः यह एक वैश्विक चिन्ता का विषय है- कामायनीकार महाकवि जयशंकर प्रसाद ने इस कठोर सत्य का आभास बहुत पहले ही कर लिया है-

आज शक्ति का खेल खेलने में आतुर नर।
प्रकृति संग संघर्ष निरन्तर अब कैसा डर?
प्रकृति-शक्ति तुमने यंत्रों से सब की छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी!

-संघर्ष सर्ग

एकबार फिर, प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से यदि विचार करें तो कामायनी का प्रकृति चित्रण वस्तुतः पर्वतराज हिमालय की उपत्यका से आरम्भ होता है जहाँ पर्वतीय शिखर की धवलता, शीतलता, लम्बे खड़े देवदार के ऊर्ध्वमुखी गगनचुम्बी विशाल वृक्षों की फैली लम्बी कतारें, शीतल हवा के झोंकों से हिलोरे खाती जल-प्लावन की अभूतपूर्व लहरें, खुले आकाश में तारों का जगमगाना और सुधाकर चन्द्रमा की चाँदनी में धवलता की तीव्रता से उत्पन्न प्रतियोगिता- सब एक ही साथ ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं मानों भू-विस्तार, क-विस्तार, ख-विस्तार Landsape seascape and skyscape का चिरसंचित समाहार हो। कविकुलगुरु कालिदास रचित कुमारसम्भव महाकाव्य का आदिश्लोक कामायनी के आदि पद से कितनी समता रखता है; इसका अनुमान दोनों पदों को सामने रखने पर सहसा पता चल जाता है। लगता है, महाकवि कालिदास ने ही खड़ी बोली में कामायनी की रचना की पूर्व पीठिका तैयार की हो। द्रष्टव्य है-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः

-कुमारसंभव

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह,

-कामायनी

जरा कामायनीकार द्वारा वर्णित कैलास की पवित्र भूमि का प्राकृतिक सौन्दर्य निहारें और एक क्षण के लिए अपनी कल्पना शक्ति को कालिदास विरचित मेघदूत की अलकापुरी में ले जायें तो आपको अद्‌भुत साम्य के साथ कैलासपति शिव की मनोरम तपस्थली के सुरम्य वातावरण और शिव के प्रधान शिष्य धनपति कुबेर की अलकापुरी की प्राकृतिक सुषमा मन को अत्यन्त ही मोह लेती है। द्रष्टव्य है-

क्षण-भर में सब परिवर्तित
अणु-अणु थे विश्व-कमल के,
पिंगल-पराग से मचले
आनन्द-सुधा रस छलके।
अति मधुर गन्धवह बहता
परिमल बूँदों से सिंचित,
सुख-स्पर्श कमल-केसर का
कर आया रज से रंजित।
जैसे असंख्य मुकुलों का
मादन-विकास कर आया,
उनके अछूत अधरों का
कितना चुंबन भर लाया।
रुक-रुक कर कुछ इठलाता
जैसे कुछ हो वह भूला,
नव कनक-कुसुम-रज धूसर
मकरन्द-जलद-सा फूला।
जैसे वनलक्ष्मी ने ही
बिखराया हो केसर-रज,
या हेमकूट हिम जल में
झलकाता परछाई निज।
संसृति के मधुर मिलन के
उच्छ्वास बना कर निज दल,
चल पड़े गगन-आँगन में
कुछ गाते अभिनव मंगल।
वल्लरियाँ नृत्यनिरत थीं,
बिखरी सुगन्ध की लहरें,
फिर वेणुरन्ध्र से उठ कर
मूर्च्छना कहाँ अब ठहरे।
गूँजते मधुर नूपुर से
मदमाते होकर मधुकर,
वाणी की वीणा-ध्वनि-सी
भर उठी शून्य में झिल कर।
उन्मद माधव मलयानिल
दौड़े सब गिरते-पडते,
परिमल से चली नहाकर

काकली, सुमन थे झडते।
सिकुड़न कौशेय वसन की
थी विश्व-सुन्दरी तन पर,
या मादन मृदुतम कंपन
छायी संपूर्ण सृजन पर।

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोनिर्मातुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुनतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषः
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्॥

कुल मिलाकर देखें, तो कामायनीकार प्रसाद और महाकवि कालिदास प्रकृति और मनुष्य की घनिष्ठता में अभिन्नता दर्शन के आग्रही प्रतीत होते हैं जिसमें समस्त विश्व की अखण्डता का भाव समाहित रहता है। भाववाचकीय संज्ञाएँ जिन्हें आप विशेषण भी कह लें तो व्याकरणिक दृष्टि से कोई अनुचित नहीं होगा। कामायनी अपने विभाजन में समग्रता से विचार करने पर मूर्त में अमूर्तता का अचेतन में चेतन का, स्थूल में सूक्ष्म का आवाहन-स्तवन है-

नीचे जल था, ऊपर हिम था
एक तरल था एक सघन।
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड या चेतन॥

-चिन्ता सर्ग

प्रकृति की मूकस्थिति मनुष्य तो क्या पशुपक्षी में भी अमूक भाव का संचार करती है और यही कारण है कि काव्यानन्द लोकोत्तर आनन्द की श्रेणी में उद्‌भासित है। कामायनीकार मानव सैन्दर्य की तीव्रता तथा यथार्थता की अभिव्यंजना में कहीं प्रकृति का आश्रय लेते हैं तो कहीं वे प्रकृति के ऊपर मानवीय भावनाओं व व्यापारों का आरोपण करते हैं।

हिमखण्ड रश्मिमंडित हो
मणि-दीप प्रकाश दिखाता,
जिनसे समीर टकरा कर
अति मधुर मृदंग बजाता।
संगीत मनोहर उठता
मुरली बजती जीवन की,
संकेत कामना बनकर
बतलाती दिशा मिलन की।

-आनन्द सर्ग

प्रसादजी कहीं प्रकृति और मानव के बीच परस्पर गाढ मैत्री सहजानुभूति तथा रमणीय रागात्मक वृत्ति का सम्बन्ध अनुस्यूत करते हैं तो कहीं प्रकृति को भगवान् की ललित लीला का निकेतन मानकर आनन्दातिरेक से आत्मविभोर हो जाते हैं।

मांसल-सी आज हुई थी
हिमवती प्रकृति पाषाणी,
उस लास-रास में विह्वल
थी हँसती-सी कल्याणी।
वह चंद्र किरीट रजत-नग
स्पंदित-सा पुरुष पुरातन,
देखता मानसी गौरी
लहरों का कोमल नर्त्तन
प्रतिफलित हुई सब आँखें
उस प्रेम-ज्योति-विमला से,
सब पहचाने से लगते
अपनी ही एक कला से।

इस प्रकार, प्रकृति के अन्तःस्थल के पारखी महाकवि जयशंकर प्रसाद की दृष्टि प्रकृति के सौम्य रूप, माधुर्यमयी प्रवृत्ति तथा सिद्ध सौन्दर्य के ऊपर विशेष रीझती है, वैदर्भी रीतिकार कविकुलगुरु कालिदास की तरह उग्रता और भीषणता से पराङ्‌मुख रहती है।

❖

'विनय–पत्रिका' की हरि–शंकरी

डॉ. (प्रो.) राजेश्वर नारायण सिन्हा

भक्त महाकवि तुलसीदास की विनय पत्रिका (मैं) की 'हरि-संकरी' एक ओर जहाँ भक्ति की हहराती गंगा है (उत्ताल तरंग है), वहीं दूसरी ओर भाषा का उच्छल प्रवाह भी। सबसे बड़ी बात यह (है) कि इसमें महाकवि ने अर्थ तत्व और संगीत तत्व की सहयोगी भूमिका में प्रथम एवं द्वितीय पंक्तियों का सुष्ठु अवतरण किया है। प्रथम पंक्ति में हरि नाम का कीर्त्तन है तथा दूसरी पंक्ति में शंकर का गुणानुवाद है। यहाँ डॉ. (प्रो.) राजेश्वर नारायण सिन्हा ने 'हरि-शंकरी' पदों का गहन अवगाहन कर बड़ा ही प्रभावोत्पादक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पाठक का मानस इस आलेख को पढ़कर 'राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा' की ओर अग्रसर होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

विनय–पत्रिका तुलसीदास कृत 279 गेय पदों की क्रमित पुस्तक है। पदों का विषय है–विनय। यह विशेष प्रकार की प्राशांतिक–प्रणति की राग–बद्ध शैली में लिखी गई आत्माभिव्यक्ति है। इसमें कवि–मानस की आस्था के साथ इच्छा और क्रिया का मधुरतम अभिव्यंजन है। कवि वैष्णव सन्त है। विनय–पत्रिका के कवि का मानस श्रद्धा और भक्ति–पूर्ण है। भारतीय संस्कृति के बहुदेववाद के प्रति श्रद्धा और उनकी कृपा में विश्वास व्यक्त करते हुए तुलसीदास उनसे रामभक्ति का वर माँगते हैं।

पदों की विषय–सूची और राग–सूची के अवलोकन से स्पष्ट है कि कवि ने अर्थ–तत्त्व के साथ संगीत–तत्त्व का अद्‌भुत संश्लेषण किया है। अर्थ–तत्त्व कवि मानस में बिम्ब संजोते हैं और संगीत–तत्त्व कवि की तन्मयता आवेशित करते हैं। शास्त्रीय संगीत की भारतीय परंपरा के अनुरूप पदों की रचना उच्च स्तरीय रागात्मक– मानस की छवि प्रकट करते है।

साहित्य का मूलतत्त्व भाव है। भाव जब भाषाबद्ध होकर ध्वनिमय संवेगों से संगीत मे मिलते हैं तब आरोह–अवरोह और स्वरण की क्रिया से कवि सानस में तन्मयता उत्पन्न करते हैं। नाद रूप परम ज्योति में आलम्बन प्रधान पूज्य छन्दों का आस्वादन करके महाकवि आत्मानन्द प्राप्त करते हैं। विशेषणमयी अर्थ–भंगिमा से हृदय की तन्त्री बजती है। विनय–पत्रिका के गीत कवि–मानस की सात्त्विक–दशा में देवों की शरणागति के साथ आत्म–निवेदन प्रधान बन गये हैं। इसके दो खण्ड हैं– आलम्बन प्रधान देवस्तुति

खण्ड और श्री राम विनय खण्ड। दोनों ही खण्डों के पद संगीत प्रधान है। इस पर विचार के लिये विषय तालिका और राग सूची नीचे दी जा रही है–

क्रम	देव	पद–संख्या से	तक	सं.
1	श्री गणेश–स्तुति	1	–	1
2	श्री सूर्य–स्तुति	2	–	1
3	श्री शिव–स्तुति	3	14	12
4	देवी–स्तुति	14	16	2
5	गंगा–स्तुति	17	20	4
6	यमुना–स्तुति	21	–	1
7	काशी–स्तुति	22	–	1
8	चित्रकूट–स्तुति	23	24	2

यहाँ तक देव–देवी और पावन नद तथा तीर्थ–स्थलों की स्तुति है।इन सबों से राम–भक्ति की याचना करते हुए कवि–मानस श्री राम के परिकरों की स्तुति में पगता है।इनका क्रम 9 से 15 तक है।

क्रम	देव	पद–संख्या से	तक	संख्या
9	हनुमत्–स्तुति	25	36	12
10	लक्ष्मण–स्तुति	37	38	2
11	भरत–स्तुति	39	–	1
12	शत्रुघ्न–स्तुति	40	–	1
13	श्री सीता–स्तुति	41	42	2
14	श्री राम–स्तुति	43	45	3
15	श्री रामनाम–वन्दना	46	–	1

इस प्रकार की क्रम बद्धता में कवि–मानस देव वर्गीय परिधि में रमते हुए इष्टदेव की महत्तम आराधना श्री राम वन्दना में विश्रान्ति पाता है।

क्रम	देव	पद संख्या से	तक	संख्या
16	श्री राम की आरती	47	48	2
17	हरि शंकरी के तीसरे क्रम के बाद	49	–	1
18	श्री राम–स्तुति	50	56	7
19	श्री रंग–स्तुति	57	59	3
20	श्री नारायण–स्तुति	60	–	1
21	श्रीविन्दु–माघव स्तुति	61	63	3
22	श्री राम–वन्दना	64	–	1
23	श्रीराम–नाम जप	65	70	6

ये सभी काशी में स्थित विभिन्न नामों से ब्रह्म विग्रहों के पूज्य देव हैं। इस प्रकार प्रथम खण्ड (स्तुति–खण्ड) का समापन होता है। इसमें कवि आनन्द की साधनावस्था में है।

यह खण्ड पत्रिका प्रेषण का आरंभिक उपक्रम है। इस लम्बी भूमिका के बाद मन बोध और जग–बोध के आत्मनिष्ठ प्रसंग विविध राग–रागिनियों में पद–संख्या 279 तक चलते हैं। यहाँ पूरी पत्रिका राम दरबार में पहुँचती है। सभी एक स्वर से तुलसी की भक्ति का अभिनव रूप सराहते हैं। श्रीराम भी इस पर अपना मन्तव्य देकर तुलसी को कृतार्थ करते हैं।

प्रथम खण्ड आनन्द की साधनावस्था यानी प्रयत्न पक्ष के गीतों में और द्वितीय खण्ड लीला विहारी श्री राम के प्रति नैष्ठिक रागानुगा चित्र–वृत्ति की अभिव्यक्ति है। यह खण्ड आनन्द की सिद्धावस्था का काव्य है। विनय–पत्रिका के गीत रागक्रम से इस प्रकार संजोये गये हैं। राग–सूची का क्रम निम्नवत् है।

क्रम	राग का नाम	पदांक	संख्या
1	आशावरी	62,183–188	7
2	कल्याण	208–211,214–279	70
3	कान्हरा	24,204–207	5
4	केदारा	41–44,212–213	6
5	गौरी	31,36,45,189–197	12
6	जैत श्री	63,83–84	3
7	टोड़ी	78–82	5
8	दंडक	37	1
9	धनाश्री	4–5, 10–12,25–29, 38–40,85–105	34
10	नट	158–160	3

11	वसन्त	13,14,23,64	4
12	बलावल	1–3,21,32–34,107,134, 137–154,179–182	32
13	विहाग	107–134	28
14	भैरव	22,65–73	9
15	भैरवी	198–203	6
16	मलार	161	1
17	मारु	15	1
18	रामकली	6–9,16–20,46–61,106	25
19	ललित	75–77	3
20	विभास	74	1
21	सारंग	30,155–157	4
22	सूही विनाबल	135,136	2
23	सोरठ	162–178	17

इन गीतों में हरि–शंकरी (पद 49) अपनी शैली और साधना में विरल है। विनय पत्रिका में कथा–तत्त्व का सिद्धरूप अर्थ–व्यंजना में प्रकट किया गया है। प्रथम खण्ड का उनचासवाँ पद ''हरिशंकरी'' शीर्षक में लिखा गया है। विषय की दृष्टि से यह अध्यात्म की एक नयी शैल्य प्रकट करनेवाला पद है। अर्थ–सरसिज द्विसंधानात्मक है।

हरि–शंकरी (पद 49)

देव, दनुज वन दहन,
गुन गहन गोविन्द नन्दादि
आनन्द दाताऽविऽनाशी।
शंभु, शिव, रुद्र, शंकर, मयंकर,
भीम धोर तेजायतन क्रोध रासी।।1।।
अनन्त, भगवन्तज गन्दन्त
अतंक–त्रास–शमन
श्री रमन भुवनाभिरामं।
भूधराधीश जगदीश,
ईशान विज्ञानधन,
ज्ञान–कल्यान–धाम, परावर,
विभो प्रगट परमातमा प्रकृति स्वामी।
चन्द्रशेखर सूलपाणि हर,
अनघ, अज,
अमित, अविच्छिन्न
वृषीभेश गामी।।3।।
नीलजलदाभ तनुश्याम बहुकाम
छवि राम राजीवलोचन कपाला।
कंबु–कर्पूर–वपु घवल, निर्मल मौलि,
जटा सुर तरनि, सितमन माला।।4।।
वसन किंजल्कधर, चक्र–सारंग–
दर–कंज कौमोदकी अति बिशाला।
मार–करि–मत्त–मृगराज,
त्रै नौ, हर, नौमि
अपहरण संसार–जाला।।5।।
कृष्ण करुणा भवन
दवन कालीय–खल
विपुल कंसादि निर्वंशं कारी।
त्रिपुर–मद भंग कर, मत्त गजचर्मधर,
अन्धकोरग–ग्रसन–पन्नगारी।।6।।
ब्रह्म, व्यापक, अकल, सकल पुर,
परमहित ग्यान, गोतीत,
गुण–वृत्ति–हर्त्ता सिन्धु–सुत
गर्व गिरि व्रज गौरीश भव
दक्षमख अखिल–विध्वंसकर्त्ता।।7।।
भक्तिप्रिय, भक्तजन–कामधुक
धेनु हरि हरण दुर्धट विकट
विपति भारी।
सुखद, नर्मद, वरद,
विरज, अनवठनऽखिल,
विपिन–आनन्द–वीथिन–विहारी।।8।।
रुचिर हरि–शंकरी नाम–मंत्रावली
द्वन्द्व दुख हरनि, आनन्द खानी।
विष्णु–शिव–लोक–सोपान–सम–सर्वदा
वदति तुलसीदास विशद बानी।।9।।

'हरि–शंकरी' रागकली राग में गेय है। इसका अर्थतत्त्व आलम्बन की समानन्तरता में संयोजित है। दसकी कुल

अठारह पंक्तियाँ नौ बन्धो में संजोयी गई है। प्रत्येक बंध की प्रथम पंक्ति में हरि के नाम संजोये गये हैं। दूसरी पंक्ति शंकर के विशेषणों से घटित होती है। इसीलिए इस गीत का नाम हरि–शंकरी है।

आठवें बन्ध में हरि और शंकर के कल्याणकारी स्वरूप की धोषणा है। यह कवि की आस्था का बन्ध है। इसका समापन लक्ष्यीभूत है। कवि ने इसे 'रुचिर–हरि संकरी नाम मंत्रावली' कहा है। यह गीत 'द्वन्द्व–दुख हरनि आनन्द' है। यह 'विष्णु–सिव लोक सोपान आनन्द सम' है। यह 'सर्वदा वदति तुलसीदास विसद बानी' है।

इसकी विशदता द्रष्टव्य है। यह गीत विष्णु और शिव लोक प्रदायक है। अतः दोनों लोकों के तात्विक स्वरुप पर विचार आवश्यक है। शिवलोक में श्री शिव राम भक्त हैं और निरन्तर राम नाम का जप करते रहते हैं सती मोह पर राम उन्हें समझाते है–

जासु कथा कुंभज ऋषि गाई।
भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई।
सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।
मुनि धीर योगी सिद्ध सन्तत
विमल मन जेहिं ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम
जासु कीरति गावहीं।
सोइ राम व्यापक बह्म भुवन–निकाय
पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निज
तंत्र नित रघुकुल मनी।

मानस 1/51/7–12

भरद्वाज को शंभु चरित सुना कर याज्ञवल्क्य रोमांचित कर देते हैं। वहीं उपदेश करते हैं–

अहो धन्य तव जन्म मुनीसा।
तुम्ह ही प्रान सम प्रिय गौरीसा।।
सिवपद कमल जिन्हहिं रति नाहीं।
रामहि ते सपनेहु न सोहाहीं।।
बिनु छल विस्वनाथ पद नेहँ
राम भगत कर लच्छन एहँ।
सिव सम को रघुपति व्रतधारी।
विनु अघ तजी सती असि नारी।।
पनु करि रघुपति भगति देखाई।
को सिवसम रामहिं प्रिय भाई।।

मा. 1/104/4–8

विवाहोपरान्त शिवधाम में अपने पति गिरीश के समक्ष जाकर पार्वती ने चौदह प्रश्न किये है। उनके आधार पर रामचरित मानस का कथा भाग (मा. 1/43–मा. 7149) रचा गया है। उनमें पहला प्रश्न विचारणीय है। पार्वती पूछती है–

प्रभु जे मुनि परमारथवादी।
कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी।।
सेस सारदा बेद पुराना।
सकल करहिं रघुपति गुन गाना।।
पुनि तुम्ह रामराम दिन राती।
सादर जपहु अमंग–अराती।।
रामु से अवध नृपति सुतसोई।
की अज अगुन अलख गति सोई।।
जौं नृप तनय त ब्रह्म किम नारि
बिरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत
भ्रमित बुद्धि अति मोरि।।

मा. 1/108/4–1/10

पार्वती वचन में शिवलोक की एक बात आती है–

पुनि तुम्ह राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनंग अराती।।

अस्तु, शिवलोक रामभक्तिलोक है। विवाहोपरान्त मुण्डमाल का रहस्य बताते हुए शिव ने पार्वती को अमरत्व प्राप्ति के लिए उपदेशित किया–

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे
सहस्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने।

राम राम राम कहने से एक राम पद विष्णुसहस्रनाम के गायन का फल देता है। अतः आप भी मेरे साथ राम राम जप करें तो अमरत्व की प्राप्ति होगी।

(श्रीमद्भागवत प्रथम अध्याय से शुकदेव की कथा तुलसीदास ने भी उल्लिखित किया है–

सहस नाम समसुनि सिवबानी।
जपि जेई पिय संग भवानी।।

मा. 1/19/6

लंका प्रवेश के पूर्व रामेश्वर महादेव की स्थापना के क्रम में श्रीराम का सन्देश है–

लिंग थापि विधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
सिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर सपनेहुँ मोहि न पाना।
संकर बिमुख भगति चह मोरी।
सोर नाकी मूढ़ मति थोरी।।
संकर प्रिय मम द्रोही।
सिव द्रोही मम दासा।।
ते नर करहिं कलप भरि
घोर नरक महँ बास।।
जे रामेस्वर दरसनु करहीं।
ते तनु तजि मम लोक हसिघहिं।
जे गंगा जलु आनि चढ़ाईहिं।
सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहिं।।
होई अकाम जे छल तजि सेइहिं।
भगति मोरि तेहि संकर देइहिं।

मा. 6/216–6/313

तुलसी–साहित्य में शंकर के प्रति इन आप्त वचनों से स्पष्ट है कि शिवलोक में रामभक्ति का नाम कीर्तन निरन्तर चलता है। इस प्रकार तुलसीदास ने विनय पत्रिका का यह विरल गीत हरि और शंकर की नामावलियों को सामान्तरता के साथ क्रमबद्ध करके विष्णु और शिव लोक–प्राप्ति का यह मंत्र रचा है। इसकी नामावलियों की सामानान्तरता के दोनों ही देव तुलसीदास के ध्यान में परिपूरक की तरह गतिमान हैं और उनके विशेषणों के भाव और विम्ब गायक को संसार से विरत करके मोक्षप्रद रहे हैं। महाकवि ने वैष्णव दर्शन और शैव दर्शन की मान्यताओं को आत्मसात् करके महान् धार्मिक समन्वय किया है। इनके बाह्य स्वरूप भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु उपासना का स्वरूप 'कहियत भिन्न न भिन्न' है।

तुलसीदास वैष्णव धर्म के पुनः संस्थापक एवं शिवोपासना के साथ रामोपासना के दृढ़व्रती हैं। यह गीत अपने दिव्यार्थ में विशद हैं। धर्म की तीन धाराओं में ज्ञान और कर्म से अधिक समर्थ धारा भक्ति है। तुलसी की विनय–पत्रिका धर्म के सात्त्विक चिन्तन और संस्कृति के दिव्य सोपान से मण्डित है। यही कारण है कि विष्णु लोक में राम पंचायत ने इस महाग्रन्थ को तुलसी की रामभक्ति का सिद्ध काव्य कहा है। श्रीराम के चरणों पर शीश और तुलसी के मस्तक पर प्रभु का हाथ मखयोग की सायुज्य कल्पना है। कवि ने देहाध्यास द्वारा इस सत्य का साक्षात्कार किया है। हरि–शंकरी उनकी रामभक्ति याचक दशा का समर्थ गीत है।

❑

राजर्षि अम्बरीष एवं दुर्वासा की कथा

❑डॉ. जयनन्दन पाण्डेय

प्रस्तुत कथा महर्षि वेदव्यास विरचित श्रीमद्भगवत पुराण पर आधाारित है। अष्टादश पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण का विषेय महत्त्व है। इस पुराण का अध्ययन, चिन्तन एवं मनन मोक्षदायक है। मनुष्य का जीवन तबतक अधूरा है, जबतक उसने श्रीमद्भागवत पुराण का अध्ययन एवं श्रवण नहीं किया है।

> श्रीमद्भागवत पुराण भक्ति की दृष्टि से सभी पुराणों में श्रेष्ठ है. इसके अन्य कोई कारण नहीं वरन् उसकी भक्तियोग की ही पराकाष्ठा है। अपने आराध्य के प्रति अभिभूत भक्त सबकुछ त्याग सकता है लेकिन अपने अनन्य के प्रति एकान्त भक्ति वह नहीं त्याग सकता। भगवान् भी पूर्ण समर्पित भक्तों की रक्षा में ही हमेशा तत्पर रहते हैं। डा. जयनन्दन पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत श्रीमद्भागवत की राजर्षि अम्बरीष एवं दुर्वासा की यह कथा भक्त और भगवान् की इसी अनन्यता को परिभाषित करती है। निश्चय ही भगवान् विशुद्ध प्रेम के भूखे हैं और अपने उपासक की सर्वविध रक्षा करनेवाले हैं।

राजर्षि अम्बरीष मनु के प्रपौत्र एवं नाभाग के पुत्र थे। ये भगवान् के बडे प्रेमी एवं धर्मात्मा थे। धन-दौलत की दृष्टि से अम्बरीष अतुल ऐश्वर्य के मालिक थे। परन्तु उनका मन धन-संपत्तियों में नहीं लगता था। उनकी ख्रष्टि में ये धान-दौलत स्वप्नतुल्य थे। वे जानते थे कि जिस धान-दौलत के लोभ में पढकर मनुष्य घोर नरक में जाता है, वह तो केवल चार दिनों की चाँदनी है। इसीलिए वे सांसारिक सुखों में सुख नहीं देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य साधु-सन्तों की सेवा में सुख की अनुभूति करने लगे। भगवान् का सच्चा प्रेम प्राप्त होने पर सचमुच में संसार की सारी सम्पत्तियाँ तुच्छ जान पड़ती हैं। राजर्षि अम्बरीष का सम्पूर्ण जीवन भगवान् नारायण की कथा सुनने में तथा उनके पावन चरणों की सेवा में बीतने लगा। अम्बरीष के पैर भगवत्-क्षेत्रों की पैदल यात्रा में तथा उनके मन सदैव ही श्रीकृष्ण की सेवा-भक्ति में लगे रहते। इस प्रकार, उन्होंने अपने सारे कर्म यज्ञ पुरुष, इन्द्रियातीत भगवान् के प्रति उन्हें सर्वात्मा एवं सर्वस्वरूप समझ कर समर्पित कर दिये थे एवं भगवद्भक्त ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार वे इस पृथ्वी पर शासन करते थे। फलस्वरूप वे अपने हृदय में अपने अनन्त प्रेम का दान करनेवाले श्री हरि का नित्य-निरन्तर दर्शन किया करते थे।

राजर्षि अम्बरीष इस प्रकार तपस्या से

युद्र भद्रियोग और प्रजा पालनरूप स्वधर्म के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने लगे और धीरे-धीरे उन्होंने सब प्रकार की आसद्रियों का परित्याग कर दिया। जैसा कि श्रीमद्भागवत-पुराण में लिखा गया है:-

स इत्थं भक्तियोगेन तपो-युक्तेन पार्थिव:।
स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् संगान्सर्वाञ्च्छनैर्जहौ।।

राजा अम्बरीष की ख्रष्टि में संसार की सभी चीजें- घर, स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धु, हाथी, रथ, घोडे, अक्षय रत्न, आभूषणादि असत्य, सारहीन एवं नश्वर थे। शाश्व एवं सनातन अगर कोई चीज थी तो वह प्रभु नाम का स्मरण और भगवान् को अर्पित की गयी भक्ति। इसी कारण भगवान् ने उनकी रक्षा के लिए अपने सुदर्शन चक्र को निक्षिप्त किया जो उनके विरोधियों को भयभीत करने तथा भगवद्भक्तों की रक्षा करनेवाला था।

राजा अम्बरीष की पत्नी भी उन्हीं के समान धर्मशील, संसार से विरत एवं भक्ति-परायण थी। एकबार उन्होंने सपत्नीक भगवान् श्रीकृष्ण का आराधना करने के लिए एक वर्ष तक द्वादशी-प्रधान एकादशी व्रत करने का नियम ग्रहण किया। पूरी भक्ति-भावना से भगवान् का अभिषेक किया। हार्दिक भक्ति-भाव से अलंकार, चन्दन, पुष्प नैवेद्य आदि से उनकी पूजा की। इस अवसर पर ब्राह्मणों को भी उन्बोंने सादर स्वादिष्ट भोजन कराया तथा करोड़ों स्वर्णालंकृत गौवों का दान भी किया। इसके बाद ब्राह्मणों से अनुमति प्राप्त कर व्रत का पारण करने की तैयारी में लग गये। इस समय वरदान और शाप देने में समर्थ दुर्वासा ऋषि उनके सामने अतिथि के रूप में उपस्थित हुए। जैसा कि महर्षि वेदव्यासजी ने श्रीमद्भागवत में लिखा है:-

लब्धकामैरनुज्ञात: पारणायोपचक्रमे।
तस्य तर्ह्यतिथि: साक्षाद् दुर्वासा भगवानभूत्।

उनको सामने उपस्थि देखकर राजा अम्बरीष उठ खडे हुए और उन्होंने विधिवत् अतिथि-सत्कार किया। दुर्वासा ऋषि राजर्षि अम्बरीष द्वारा किये गये आतिथ्य को स्वीकीर किया और विशेष आतिथ्य-ग्रहण आवश्यक कर्मों से निवृत्ति के बाद स्वीकार करने की बात कहकर नदी तठ पर चले गये। वहाँ जाकर यमुना नदी में स्नान करने लगे। इधार द्वादशी केवल एक घड़ी बची थी, जिसमें राजा अम्बरीष के द्वारा व्रत की पारणा की जानी थी। ऐसे धार्म संकट में पड़कर राजा अम्बरीष ने ब्राह्मणों के साथ परामर्श किया। उन्होंने कहा:- ''हे ब्राह्मण देवता, ब्राह्मणों को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन कर लेना और द्वादशी रहते पारण नहीं करना दोनों ही दोष हैं। इसलिए ऐसे समय में जैसा करने से भलाई हो और पाप न लगे वैसा ही हमें करना चाहिए। श्रुतियों में ऐसा कहा गया है कि पारणा में केवल जल पी लेना ही भोजन है और नहीं भी।'' ऐसा निश्चय कर जल पी लिया और मन ही मन भगवान् का चिन्तन करते हुए दुर्वासाजी की प्रतीक्षा करने लगे। जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा है:-

इत्यप: प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन् मनसा च्युतम्।
प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव स:।।

इसी समय दुर्वासाजी आवश्यक कर्मों से निवृत्त होकर यमुना तट से लौट आये। जैसे ही राजर्षि अम्बरीष आगे बढकर दुर्वासा के समीप गये त्यों ही दुर्वासा जी अनुमान से समझ गये कि अम्बरीष ने पारण कर लिया है। वे क्रोधावेश में आ गये। क्रोधा से दुर्वासाजी थरथर काँपने लगे। उनकी भ्रूकुटी तन गयीं। दुर्वासाजी ने राजा अम्बरीष को फटकारते हुए कहा- ''तूँ कितना क्रूर है और तुझे धन का इतना घमण्ड है। तूने बगैर मुझे भोजन कराये व्रत का पारणा कर ली, कहते कहते दुर्वासा ने अपनी एक जटा उखाड़ी और अम्बरीष को मारने के लिए एक कृत्या को उत्पन्न किया। कृत्या के हाथ में एक विशाल तलवार थी, जिसे लेकर अम्बरीष पर टूट पड़ी। इधर राजर्षि अम्बरीष अविचल खडे रहे। तनिक भी अपने अन्दर भय की अनुभूति उन्होंने नहीं की। इधर परम पुरुष परमात्मा ने अपने सेवक की रक्षा के लिए पहले से ही सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर रखा था। जैसे कोई अग्नि क्रोध से फुफकारते हुए सर्प को भी जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार सुदर्शन चक्र ने दुर्वासा निर्मित ख़त्या को जलाकर राख कर दिया और दुर्वासा के पीछे चक्र चलने लगा। वह सुदर्शन उसी प्रकार दुर्वासा के पीछे पीछे दौडने लगा, जिस प्रकार दावानल साँप के पीछे दौडता है। दुर्वासा भागने लगे। भागते भागते सुमेरु पर्वत की गुफा में प्रवेश करना चाहा परन्तु निष्फल। श्रीमद्भागवत में महर्षि वेदव्यासजी ने इस प्रसंग को इस प्रकार लिखा है:

दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रान्
लोकान् सपालांस्त्रिदिवं गतः सः।
यतो यतो धावति तत्र तत्र
सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श।।

दुर्वासाजी दिशा, आकाश, पृथ्वी, अतल-वितल आदि नीचे के लोक, समुद्र, लोकपाल और उनके द्वारा सुरक्षित लोक एवं स्वर्ग तक में गये परन्तु जहाँ जहाँ गये, वहीं वहीं उन्होंने असह्य तेजवाले सुदर्शन चक्र को अपने पीछे लगा देखा, जब कहीं भी रक्षा की सम्भावना नहीं दिखी तो वे सीधे ब्रह्माजी के पास गये, परन्तु ब्रह्माजी ने सुदर्शन चक्र से रक्षा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। इसके बाद दुर्वासा महादेव के पास गये और महादेव ने भी सुदर्शन चक्र से बचाने अपनी असमर्थता बतायी। उन्होंने दुर्वासाजी को कहा:- ''दुर्वासाजी, परम पुरुष परमात्मा के विद्रोही की रक्षा हम नहीं कर सकते। यह चक्र भगवान् विश्वेश्वर का शस्त्र है। केवल वहीं तुम्हें उससे बचा सकते हैं।''

तत्पश्चात् दुर्वासा विष्णुलोक गये परन्तु वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। भगवान् विष्णु ने कहा- ''यह सुदर्शन इस समय भक्त अम्बरीष की सेवा में नियुक्त है। इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। इससे रक्षा केवल राजर्षि अम्बरीष ही कर सकता है। थक-हारकर दुर्वासा ऋषि राजर्षि अम्बरीष की शरण में आते हैं और सुदर्शन चक्र से आत्मरक्षा हेतु निवेदन करते हैं। राजर्षि अम्बरीष की करबद्ध प्रार्थना के उपरान्त वह सुदर्शन वापस चला जाता है और दुर्वासा की प्राणरक्षा होती है।

आचार्य, एम. ए., पीएच. डी.
राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कारप्राप्त,
नवलखा मन्दिर के समीप,
उपाध्याय टोला (बिचली कुआँ)
राजगीर, नालन्दा

''तुलसी-साहित्य पर संस्कृत के अनार्ष-प्रबन्धों की छाया'' एक दृष्टि

❑ डा. आलोक कुमार

(महावीर मन्दिर द्वारा शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक ''तुलसी-साहित्य पर संस्कृत-काव्यों की छाया'' की विवेचना)

यह कृति स्मृतिशेष ब्रह्मलीन गुरुदेव डा. रामतवक्या शर्माजी का शोध-प्रबन्ध है। इसका उपक्रम आचार्य राजशेखर की पुस्तक काव्य-मीमांसा के संकेत पर 'छायाग्रहण मीमांसा' के सिद्धान्त निरूपण से होता है। यह 1960-90 के दशक का हिन्दी संसार का अनोखा शोध -प्रबन्ध है। इसके लेखन के सम्बन्ध की इच्छा और क्रिया का इतिहास अपने आप में रोचक और ज्ञान-वर्द्धक है।

श्रीशर्माजी तत्कालीन गया जिला के मकदुमपुर अंचल के चाँढ़ गाँव के मध्य विद्यालय के शिक्षक स्व. बृजनन्दन शर्मा के बड़े पुत्र हैं। इनके पिताजी हिन्दी भाषा और व्याकरण के प्रखर शिक्षक थे। छात्र जीवन से ही इनके मानस पर पिता के प्रखर संस्कारों का प्रभाव था। छात्र जीवन काल से ही इनमें गम्भीर अध्ययन और राष्ट्रीय स्तर के लेखन की प्रतियोगिताओं में भागीदारी की रुचि थी। सुलेखा स्याही के निर्माता की घोषित प्रतियोगिता में इन्हें प्रथम स्थान मिला। अन्य कई प्रतियोगिताओं में इनकी सफलताओं ने इनके अध्ययन को प्रोत्साहन प्रदान किया। ये अपने तथा अपने अन्य तीन भाइयों के पालन-पोषण और सुशिक्षण का खर्च ट्यूशन करके चलाते थे।

इनकी वाक्कला अत्यन्त प्रभावोत्पादक थी। प्रथम श्रेणी में पटना विश्वविद्यालय से एम. ए. पास करने पर पटना विश्वविद्यालय में इन्हें व्याख्याता का पद मिला। पटना विश्वविद्यालय के विद्वान् प्राध्यापक एवं अध्यक्ष प्रो. जगन्नाथ राय शर्मा के ये कृपापात्र थे। अध्यापन क्रम में निबन्ध की पुस्तक के एक शीर्षक के उद्धरणों की असंगतियों पर इनकी निगाह गयी। जिस उद्धरण के आधार

स्मृतिशेष डा. रामतवक्या शर्मा का शोध-प्रबन्ध तुलसी-साहित्य पर संस्कृत के अनार्ष प्रबन्धों की छाया 1960-70 के दशक का एक ऐसा शोध -प्रबन्ध है जिसने न केवल बिहार बल्कि सम्पूर्ण भारत के हिन्दी-साहित्य जगत् के शीर्षस्थ-विद्वानों को अपने विस्मयकारी अभूतपूर्व शोध-लेखन कार्य से अभिभूत कर दिया। पटना विश्वविद्यालय ने अपने तत्कालीन सारे नियमों को शिथिल कर पी. एच.डी. के साथ-साथ डी. लिट् की महार्घ डिग्री दे इन्हें महिमा-मण्डित किया। इनके शिष्य रहे डा. राजेश्वर नारायण सिन्हा ने इन्हें पाण्डुलिपि-लेखन में यदा-कदा सहयोग भी किया तथा इन्हीं के निदेशन में अपना शोध-कार्य भी सम्पन्न किया।

एक सुयोग्य शिष्य की उत्कृष्ट लेखनी से ब्रह्मरूप गुरु की पवित्र जीवनी का यह तथ्यपरक लेख वस्तुतः आशंसनीय है।

पर विषय का विश्लेषण किया गया था, उसकी एक कड़ी के बाद दूसरी कड़ी अन्यत्र की थी। इसलिए विश्लेषण की असंगति ने इन्हें मूल पुस्तक देखने तथा उस उद्धरण के सही रूप को खोजने की जिज्ञासा उत्पन्न की। मूल मिल गया। असंगतियाँ समक्ष आयीं। बात यों स्पष्ट हुई कि प्रमाण के सन्दर्भ-संकेत में याददाश्त का आधार लेकर सही मूल्यांकन सम्भव नहीं है। पण्डित जगन्नाथ राय शर्मा के समक्ष समस्या रखी गयी और इस निबन्ध को सिलेबस से हटा दिया गया।

1850-60 के दशक तक हिन्दी शोध सबके वश की बात नहीं थी। रायजी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पालि और हिन्दी के गम्भीर अध्येता थे। इसके साथ भारतीय दर्शनों का भी गम्भीर ज्ञान था। भक्ति साहित्य में इनकी गम्भीर रुचि थी। मानस-त्रिशती के समय से हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन की दिशा निर्धारण के लिए उतर भारत के हिन्दी प्रान्तों में प्रखर जिज्ञासा हुई। देश भर के विद्वानों ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में तुलसी ग्रन्थावली, जायसी ग्रन्थावली, सूरसागर जैसी महार्घ कृतियों का प्रकाशन के पाठालोचन तथा विविध विधाओं की शास्त्रीय पुस्तकों का प्रणयन आरम्भ किया। तत्कालीन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, नन्ददुलारे वाजपेयी, अयोध्याप्रसाद सिंह 'हरिऔध' तथा अन्य अनेक विद्वानों ने सभा के तत्त्वावधान में मनोयोग से हिन्दी के विधा-स्थापन तथा समालोचना का विकास आरम्भ किया। पंडित जगन्नाथ राय शर्मा बिहार के ऐसे यशस्वी विद्वान् थे, जिन्होंने तुलसी और सूर को अपने गम्भीर अध्ययन और अध्यापन का विषय बनाया। अपनी तुलसीदास विषयक पुस्तक में उन्होंने नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।। स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबद्धमतिमञ्जुलमातनोति।। की बृहद् व्याख्या की।

श्रीरायजी ने भी अपनी पुस्तक में मानस-मीमांसा का प्रारूप तैयार किया। इसके आधार पर कई प्रबन्ध तैयार हुए। सादृश्य पंक्तियों को लेकर विश्लेषण का प्रश्न समक्ष आने पर पंडित जगन्नाथ राय शर्मा ने समस्त तुलसी साहित्य पर कार्य करने के लिए डा. रामतवक्या शर्मा को प्रेरित किया।

डा. शर्मा आरभ से ही प्रसरणशील व्यक्तित्व के गतिमान पुरुष थे। अयोध्या धाम की यात्रा इन्हें प्रिय थी। शर्मा जी वहाँ के रामायणियों के बीच अपने प्रभावशाली भाषणों से इनके बीच काफी लोकप्रिय बन गये थे। पटना में भी उनका सम्पर्क-क्षेत्र बुद्धिजीवी-जिज्ञासुओं का था। मैंने उन्हें तत्कालीन पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति नन्दलाल उंटवालिया के यहाँ जाने और सत्संग से लाभ लेने-देने की चर्चा करते सुना था। विद्या-व्यसन के कारण अयोध्या के विद्वान् सन्त पं. रामकुमार दास 'रामायणी' की कृपा अर्जित कर ली थी। मणिपर्वत के उक्त महात्मा के राम-ग्रन्थागार की विशेषता यह थी कि प्रायः सभी प्रकार की संस्कृत एवं हिन्दी की प्रकाशित पुस्तकों की दो प्रतियाँ वहाँ उपलब्ध थीं।

अनार्ष-प्रबन्धों की सूची तैयार हुई। उसमें विविध चरितात्मक प्रबन्धों को प्रारूप का अध्याय बनाया गया। तुलसी साहित्य और उन ग्रन्थों की सामान्तर पंक्तियों को खोजना प्रथम कार्य था। इसके लिए महात्मा रामकुमार दासजी सटीक व्यक्ति थे। आग्रहपूर्वक उन्हें अपने आवास पर लाया गया। उनके सत्कार और सम्मान की पूरी व्यवस्था की गयी।

पंडित जगन्नाथ राय शर्मा ने सेवा निवृति के बाद पटना में ठहरकर शोध कार्य पूरा करने के लिए समय दिया। मुसल्लहपुर हाट में

नाथ-निवास था। नाथ-निवास की प्रथम मंजिल पर रहकर दोनों गुरु-शिष्य साधक की तरह चयनित पंक्तियों की सामानान्तरता और अर्थ-सम्पादन की भंगिमाओं पर विमर्श करते। शोधकर्ता उसके आधार पर सादे कागज के ताव पर अपना विनियोग लेखन करते। तदनन्तर काट-छाँट और तर्क-वितर्क के साथ लेखन का कच्चा प्रारूप तैयार होने लगा। इस प्रकार विद्वत् मंडली के सहयोग से शोधकार्य ''गुरुः पूतं वदेद् वाक्यम्' के रूप में सम्पन्न हुआ।

मेरा सम्पर्क

मैं बरबीघा अंचल के बभनबीधा गाँव के सामान्य गृहस्थ स्व. देवकीनन्दन सिंह का पुत्र हूँ। मैंने बी. ए. की परीक्षा देकर 1957 ई. में महात्मा गाँधी आदर्श उच्च विद्यालय, बभनबीघा में सहायक शिक्षक की नौकरी आरम्भ की। मैं स्वतंत्र रूप से 1869 ई. में पटना विश्वविद्यालय पटना की एम. ए. हिन्दी परीक्षा में सम्मिलित हुआ और द्वितीय क्षेणी में उत्तीर्ण हुआ। 1863 ई. में मुझे भी शोध करने की सनक सवार हुई। स्थानीय श्रीकृष्णरामरुचि महाविद्यालय, बरबीघा के प्राध्यापक श्री सत्यनारायण शर्मा ने मुझे 1863 ई. के जून माह में पंडित जगन्नाथ राय शर्मा से मिलाया। शर्माजी, सत्यनारायणजी का शोध प्रबन्ध 'रामचरितमानस में भक्ति' का कार्य सम्पन्न कराने की स्थिति में थे।

मेरे पास अपना बनाया हुआ एक शोध-प्रारूप 'हिन्दी महाकाव्यों में नारीका स्वरूप' तैयार था। उसमें वेद-प्राण एवं प्राचीन परम्परा के सन्दर्भों की चर्चा की गयी थी। परीक्षाकाल में भगवान् राम की कृपा पाने के लिए मैं 'मानस' के दैनिक पाठ के रूप में एक अंश रोज पढ़ता था। सूरदास मेरा विशेष पत्र था। गुरुदेव पं. जगन्नाथ राय शर्माजी के समय मेरी आत्मा ने उनके कृपापात्र होने की श्रद्धा प्रकट की। उन्होंने कहा- ''आप इस विषय को अभी छोड़ दें। एक छोटा विषय- 'हिन्दुत्व की रक्षा में सूर का योग' पर अनुसन्धान कार्य करें।''

इसी क्रम में जब मैं सन्ध्या को टहलने निकला तो उन्होंने 'सूर साहित्य-दर्पण' नामक स्वलिखित पुस्तक के प्रकाशक से पाँच रुपये में एक प्रति मेरे लिए खरीद दी। साथ ही, हिन्दू विचार से इस्लामिक भारत की इतिहास पुस्तकों को पढ़ने के लिए डा. योगेन्द्र मिश्र, इतिहास विभाग के प्राध्यापक के पास मुझे भेजा। उनकी सम्मति से कुछ पुस्तकें मैंने पढ़ी; नोट तैयार किये।

इसी क्रम में पंडित जगन्नाथ राय शर्मा ने शोध-निदेशक के रूप में डा. रामतवक्या शर्माजी का नाम प्रस्तावित किया। शर्माजी ने स्पष्ट कहा- यह विषय गुरुदेव के अतिरिक्त किसी के निर्देशन के सामर्थ्य से बाहर है। आप तुलसी की अप्रस्तुत योजना पर कार्य आरम्भ करें। गुरुवरद्वय के परामर्श और विश्लेषण से कार्य आरम्भ हुआ। इसी क्रम में मेरा उनसे सम्पर्क हुआ। डा. शर्माजी का प्रबन्ध टंकित हुआ। दो जिल्दों में इसकी चार प्रतियाँ पीएच.डी. की उपाधि के लिए समर्पित की गयी।

तीनों परीक्षकों ने एक स्वर से अनुशंसा की कि इस पर विश्वविद्यालय की ऊँची से ऊँची डिग्री दी जाय। यह प्रश्न पटना विश्वविद्यालय की विद्वत् परिषद् के लिए विचारणीय हुआ। इसके लिए नियम में परिर्वतन की आवश्यकता हुई। एक विरोधी वर्ग भी था जो सक्रिय हुआ। अन्ततः नियमावली सुधारी गयी और कहा गया कि निदेशक का प्रमाण-पत्र हटा दिया जाये। फिर

से जिल्द बँधवाकर समर्पित किया गया। साधु गुरुदेव पंडित जगन्नाथ राय शर्मा ने अपनी सहमति देकर उदारता दिखायी। उन्हें अपने शिष्य के कल्याण की कामना थी; शर्माजी को गुरु का प्रमाण-पत्र हटाना मान्य नहीं था। गुरु की आज्ञा और तत्कालीन कुलपति डा. जैकोब साहब के हस्तक्षेप ने गत्यवरोध दूर किया। देशभर के चुने हुए तीन विद्वान् इसके परीक्षक हुए। इनमें डा. बाबूराम सक्सेना प्रसिद्ध भाषाशास्त्री भी एक थे। उन दिनों वे रायपुर विश्वविद्यालय में थे। मौखिकी रायपुर में सम्पन्न कराई गयी। परीक्षाफल प्रकाशित कराया गया। दीक्षान्त समारोह के एक दिन पूर्व रातों रात डिग्री छपी और दीक्षान्त समारोह में प्रदान की गयी। उस दिन मैं भी पटना में था और एक दर्शक के रूप में वहाँ गया था।

डा. शर्मा के आवास पर संध्याकाल में शुभचिन्तकों और मित्रों का ताँता लग गया। यह थीसिस ऐतिहासिक इस मामले में भी थी कि विरोधियों के अवरोध को पार करके पीएच. डी. के बदले डी. लिट्. के लिए पारित हुई।

इसकी विशेषताएँ

एक शोध-छात्र के रूप में मैं महीनों श्री रामतवक्या शर्माजी के आवास पर रहने लगा। मुझे एक-एक वाक्य पढ़कर टंकन सम्बन्धी भूलों को सुधारने को कहा गया; अत: एक नजर मेरी भी आदि से अन्त तक इस शोध-प्रबन्ध पर पड़ी। मेरी दृष्टि में निम्नांकित बातें सामने आयीं।

(क) तुलसी-साहित्य की समानान्तर पंक्तियों का सभी अनार्ष-प्रबन्धों में छाया ग्रहण भीमांसा के सिद्धान्त के अनुरूप विवेचन-विश्लेषण एक श्रम-साध्य कार्य है। तुलना के क्रम में उद्धरणों की प्रामाणिकता के लिए सन्दर्भ-संकेत इस रूप में दिये गये हैं कि पाठक उन्हें सरलता से दोनों के मूल में खोज सकते हैं। अत: उद्धरणों का सटीक संकेत इस शोध की पहली विशेषता है।

(ख) इस प्रबन्ध की कार्य-भंगिमा अर्थ क्षेत्रीय है। शब्दार्थ काव्य की काया कही गयी है। तुलसीदास 'वर्णानां अर्थसंघानां'' को काव्य-भाषा का रूप स्वीकार करते हैं। सामानान्तरता का प्रथम रूप कायिक (शब्दार्थतात्त्विक) है।

(ग) कवि-कर्म पर शास्त्रकारों ने कई दृष्टियों से विचार किया है। कवि बुद्धि का विवेचन आचार्य राजशेखर ने स्मृति और प्रज्ञा कहकर किया है। कवि-कर्म-काल में कवि समाधि दशा में होते हैं। राजशेखर समाधि को अन्त:प्रयत्न कहते हैं। तात्पर्य यह कि अपने अचेतन, अवचेतन और चेतन स्तर तक के मानस-व्यापार में तारतम्य जुटाना और वाक्यार्थ योजना करते हुए काव्य को गति प्रदान करना कवित्व क्षमता का प्रमाण है।

कवि-बुद्धि में स्मृति, देखे सुने या पढ़े व्यापारों का स्मरण करना है। उस पर विचार करके मन को सन्तुष्ट करना मति है। तुलसीदास का प्रयोग द्रष्टव्य है-

राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है।

प्रज्ञा कवि की नैसर्गिक शोध शक्ति है। यह प्रतिभा को नयी दिशाओं में उन्मीलित करती है। कहा गया है- **नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम्**। अर्थ-योजना के उपादान कारणों को वामनाचार्य ने **लोको विद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि** (काव्यालंकारसूत्र) कहकर समास शैली में व्यक्त किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रकार की कल्पना को स्मृत्याभास के कल्पना स्वीकार की है। (रस-मीमांसा)

इस प्रकार की सामानान्तरता कवि मानस की स्मृत्याभास कल्पना की उपलब्धि है।

इस ग्रन्थ में जितनी मात्रा में सामानान्तर पंक्तियों की गवेषणा तुलना और अर्थ-भंगिमा के विनियोग के उद्धरण है; यह प्रातिभ तो है ही, यह कवि की व्युत्पति के विशाल क्षेत्र का भी एक अंश है।

इस प्रबन्ध में व्युत्पत्ति के विशाल क्षेत्र का अवगाहन किया गया है। इसके विनियोग प्रकरण में इसकी दिशाएँ, समकालीन वैदिक वाङ्मय की वैदिक लौकिक संस्कृति के साथ-साथ धार्मिक सुधार के विभिन्न पात्रों के चरित्र पर कवियों द्वारा रचित प्रबन्धों की छाया कवि-मानस की रुझान का आन्तरिक विश्लेषण है।

तुलसी साहित्य पर शोध-कार्यों की भरमार है। उनकी दृष्टियाँ भी अनेक हैं। मेरी समझ में इस गवेषणा में जो डा. शर्मा की शोध-दृष्टि है, उसमें तुलसीदास के मानस की क्षमता की गवेषणा के मनोवैज्ञानिक आधार संचित हैं। कवि-मानस का अध्ययन मनोवैज्ञानिक आलोचना का कठिनतम कार्य है। अंग्रेजी में आर्थर कोसलर ने इस प्रकार का प्रयत्न किया है। डा. शर्मा की यह गवेषणा तुलसी-मानस का वह प्रमाण है जो अभ्यास की पूर्णावस्था में गति का रूप लेकर अध्येताओं के समक्ष लोक दर्शन, लौकिक व्यापारों का स्वार्थपूर्ण संचरण और उनके परमार्थक्षेत्रीय उपपादन पर महाकवि की आत्मदृष्टि का प्रतिबिम्ब है।

समासत: इस श्रमसाध्य एवं विद्वन्मण्डली से परिपोषित यह शोध-प्रबन्ध उस काल की दुर्लभ शोध सम्पदा थी। इसके प्रकाशन में जिन कारणों से भी विलम्ब हुआ है, वह विश्व शोध साहित्य की अपूरणीय क्षति है। पर, प्रसन्नता का विषय है कि महावीर मन्दिर प्रकाशन के द्वारा इस महार्घ ग्रन्थ का श्रमसाध्य प्रकाशन किया जा रहा है।

'नया काव्यशास्त्र' नामक पुस्तक में रामधारी सिंह 'दिनकर ने अपना अनुभव व्यक्त किया है। कविता लिखते समय कवि को दो स्तरों पर कार्य करना पड़ता है। प्रथमत: वह मानस में अनुभूत विषय को भाषा देता है पुन: इस बात पर ध्यान रखना पड़ता है कि वह जो कुछ कहना चाहता है वह ठीक-ठाक कहा गया है या नहीं।

अस्तु, निष्कर्ष यह है कि इस पुस्तक की गवेष्य दृष्टि इसके प्रथम अध्याय में तथा विनियोग इसके शेष अध्यायों में है। यह कवि मानस के तात्त्विक अन्वेषण का एक समर्थ सोपान है। डा. शर्मा ने जीवन पर्यन्त अपने शोधार्थियों को मूल को पढ़ने, मूल से कार्य करने, समस्याओं का शास्त्रीय निदान निष्कर्षित करने का सुझाव देकर शोध निर्देशन किया। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी आलोचना साहित्य के विशेष दिशा-निर्देश का सोपान है; तुलसीदास की बहुज्ञता का यह ऐसा प्रमाण है जो काव्य की सिद्धावस्था में रमण करनेवाले कवि के मानस चक्षु की झाँकी प्रस्तुत करता है।

अतिथि प्राध्यापक

बी. एन. एम. महाविद्यालय, बढहिया
तिलकामाँझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

सामाजिक सद्‌भाव का दृष्टान्त : सिमरी का महावीरी झण्डा

❑ लक्ष्मीकान्त मुकुल

सामाजिक और धार्मिक समरसता का एक अद्‌भुत उदाहरण गाँव सिमरी में मिलता है, जहाँ दशहरा में महावीरी झण्डा उठाने की प्रथा एक शिया मुस्लिम द्वारा सौ वर्ष पूर्व आरम्भ की गयी थी, जो आज भी परम्परा में जारी है। 'शाहाबाद महोत्सव स्मारिका' में प्रकाशित जाफर हसन बेलग्रामी के एक आलेख में कहा गया है कि सद्‌भावना को अक्षुण्ण बनाये रखने वाले ऐसे तत्त्वों की गहराई को समझते हुए इस महावीरी झण्डा उत्सव में भाग लेना चाहिए।

जीवन जीना एक कला है। वही व्यक्ति अथवा समाज इस निकष पर रेखाओं से अपनी पहचान बना पाता है, जिसने अनोखी सूझ-बूझ से इस कला को आत्मसात् किया है। इसी यथार्थ सत्य को जीता समाज अबतक चला आ रहा है। रहीम, कबीर, तुलसी, जादू रसखान के आदर्शों पर चलते हुए हम आजतक बड़े तुष्ट हैं। इसी भाव-भूमि पर खड़ा महावीरी झण्डा दो सम्प्रदायों के आपसी सद्‌भाव की जीवन्त कथा है और यही गंगा-जमुनी संस्कृति की अविरल धारा है। मुकुलजी ने इससे हमें अवगत कराया इसके लिए कोटिशः धन्यवाद।

करीब दो हजार की आबादी का गाँव सिमरी, जहाँ शिया व सुन्नी मुस्लिमों के अलावे हिन्दू भी काफी संख्या में निवास करते हैं, यह गाँव रोहतास (बिहार) जिला के दावथ प्रखण्ड के अन्तर्गत है तथा आरा-मोहनिया राष्ट्रीय उच्च मार्ग (एन.एच.-30) पर मलियाबाग के पार्श्व में अवस्थित है। यह गाँव ठोरा और काव नदियों के दोआब में बसा है।

मुस्लिम बिरादरी द्वारा हिन्दू देवी-देवताओं के गौरव ग्रन्थों के प्रति सम्मान की भावना के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिसमें रामभक्त हनुमान् के प्रति आदर की भावना सबसे प्रबल मिलती है। हनुमानजी के कार्य और चरित्र से सभी वर्गों के लोग अनादि काल से ही प्रभावित रहे हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहा जाए तो हनुमानजी भगवान् के एकनिष्ठ उपासक हैं, इसलिए समस्त जगत् के कष्ट को दूर करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। भारतीय साहित्य और साधना में ऐसे परोपकारी एकनिष्ठ भगवत् सेवक का चरित्र दुर्लभ ही है।

जनदेवता हनुमान के प्रति मुस्लिमों द्वारा प्रकट किए गए सम्मान और समर्पण का व्यापक रूप से विवरण 'कल्याण' के 'हनुमान् अंक' में मिलता है। लखनऊ के अलीगंज मुहल्ले में गोमती के

पास तत्कालीन अवध के नवाब मुहम्मद अली शाह की बेगम रबिया (सन् 1792-1802) ने सन्तान प्राप्ति के लिए स्वप्न-दर्शन के आधार पर मनौती स्वरूप इस्लामबाड़ी में हनुमानजी का मन्दिर दिया था। हनुमानजी की मूर्ति बेगम साहिबा ने सपने में निर्देशित टीला को कारिन्दों से खुदवाकर निकलवाया था। मुस्लिम बिरादरी के लोग भी उनकी पूजा करते हैं और वहाँ मेला भी लगता है। फैजाबाद के प्रशासक नवाब मंसूर अली ने अपने पुत्र के भयंकर रोग से छुटकारा पाने के लिए हनुमानजी से मनौती माँगी। स्वस्थ हो जाने पर अयोध्या में श्रद्धावनत नवाब के द्वारा मन्दिर का निर्माण कराया तथा बावन बीघा भूमि उस मन्दिर को दान में दिया एवं साधुओं को धूप में आराम करने के लिए इमली के पेड़ भी लगवाए।

सिमरी में बसा शिया मुस्लिम परिवार को कोआथ के नवाब परिवार की एक शाखा माना जाता है। अंग्रेजी शासन-काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सर्वेयर फ्रांसिस बुकानन द्वारा सन् 1812-13 में शाहाबाद के सर्वेक्षण रिर्पोट में कोआथ के नवाब नुरुल हसन के परिवार और उनकी जमीन्दारी का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इनके पुरखे शुजाउद्दौला की फौज के कमांडर थे, जिसकी उपलब्धि में उन्हें शाहाबाद जिला के आरा परगना में 105 मौजे तथा दनवार और दिनारा परगनों में 153 गाँव बेलगान मिले थे, जिसे लखराज संगता गंग कहा जाता था। इनकी जमीन्दारी परिवार के ही कुल पन्द्रह शेयरों में बँटी थी। कोआथ और सिमरी गाँव इन्ही खान लोगों की कोठियों के कारण मशहूर थे। अवध के बेलग्राम नामक स्थान से आया यह परिवार अपने नाम के अन्त में बेलग्रामी शब्द जोड़कर अपनी पृथक पहचान कायम रखता है। शाहाबाद गजेटियर के मुताबिक इस परिवार में अनेक कवि-शायर व अधिकारी भी हुए हैं। जिला की प्रमुख मिठाई बेलग्रामी का चलन इन्हीं लोगों ने शुरू किया था। इनके पास अभी भी मुगलकाल व औपनिवेशिक जमाने के ऐतिहासिक दस्तावेज, पाण्डुलिपियाँ और चित्र, सुरक्षित हैं। ब्रिटिश शासन द्वारा खान की उपाधि से विभूषित होने के कारण 'खान की सिमरी' नाम से इस गाँव को ख्याति मिली। सिमरी स्थित बेलग्रामी परिवार अपनी उदारता, समर्पण, हिन्दू समाज से भाईचारा और विद्वानों, सन्तों और फकीरों को आदर देनेवाला माना जाता है। आज भी ये लोग भौतिकवादी व्यवस्था में 'नदी के द्वीप' की तरह अपनी पहचान बनाये हुए हैं। सिमरी गाँव का काली स्थान, महावीरी अखाड़ा और जोगीवीर आदि हिन्दू धार्मिक स्थलों की पर्याप्त जमीन बेलग्रामी परिवार ने ही दान में दिया था।

इस महावीरी झण्डा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा सामाजिक सांस्कृतिक अवदान के विषय में जानकारी हासिल करने के लिए सिमरी गाँव के ग्रामीणों तथा आस-पास के गाँव यथा धारकन्धा, अवाढ़ी, चौरांटी, परसिया कला, केवटी टोला, जमसोना, बभनौल, महुअरी, परमेश्वरपुर और मलियाबाग के बुद्धिजीवियों व बुजुर्गों से गहन पड़ताल की गई। सिमरी मध्यविद्यालय के सेवानिवृत्त शिक्षक स्थानीय निवासी 76 वर्षीय हनुमान सिंह ने बताया कि जैसा उन्होने बड़े-बूढ़ों से सुना है कि बेलगामी परिवार के लोग उस समय नवाब थे। इख्तिखार हसन बेलग्रामी के पितामह सर सैयद मरहूम शाह हसन बेलग्रामी नरसिंह दूबे आदि सिपहसलारों के साथ अपनी कोठी पर बैठे हुए थे, तभी उन्होंने देखा कि गाँव के काफी लोग अच्छे परिधानों में सज-धजकर झुंड के झुंड कहीं जा रहे हैं। इस बाबत पास बैठे लोगों से उन्होंने पूछा कि ये लोग कहाँ जा रहे हैं? तो उत्तर मिला कि पास के गाँव बभनौल में दशहरे के दिन झण्डा उठता है, उस झण्डा-जुलूस में शामिल होने और वहाँ के अखाड़े का दंगल-करतब देखने ये लोग जा रहे हैं। यह बात उनको नागवार लगी कि इस इलाके का सबसे नामी गाँव तो सिमरी है, जिसकी जनसंख्या भी काफी है, यहाँ नवाब खानदान रहता है, जिसका नाम काफी दूर तक फैला है, परन्तु यहाँ के लोग एक कमतर गाँव बभनौल में महावीरी झण्डा उत्सव मनाने के लिए जा रहे हैं। उन्होंने अगले दिन पूरी सिमरी बस्ती में डुगडुगी पिटवा कर ऐलान कराया कि आज नवाब साहब की कोठी पर एक आवश्यक मजलिस जमेगी, जिसमें आम व खास सभी शिरकत करेंगे। उस बैठक में नवाब साहब ने गाँववालों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि क्या यह महावीरी झण्डा हमारे गाँव सिमरी में नहीं हो सकता? उनके इस कथन से पूरे गाँव के हिन्दू आश्चर्य में पड़ गये और सबने एकमत से उनकी इच्छा का समर्थन किया। नवाब साहब ने कहा कि अब अगले साल से यहाँ के लोग बभनौल में महावीरी झण्डा उठाने का काम बन्द करेंगे और झण्डा प्रतिवर्ष यहाँ से ही उठेगा और यहीं के अखाड़े तक जायेगा, जहाँ दंगल-खेल-तमाशा होगा।

कहते हैं कि अगले वर्ष दशहरा से एक माह पहले ही नवाब साहब ने गाँव के कुछ जागरूक लोगों को उस जमाने में चार सौ रुपया चाँदी के विक्टोरियन सिक्के देकर बनारस में झण्डा बनवाने के लिए जिम्मेदारी के साथ भेजा। लाल रंग के मखमल के कपड़े का एकरंगा झण्डा बनारस स्थित दालमंडी के समीप नारियल बाजार में झण्डा बनाने की मशहूर दुकान नारायण के. दास के यहाँ

बनवायी गयी जिसपर सोने के तार से महावीरजी की आकृति उभारी गयी। कहा जाता है कि उसमें एक किलोग्राम सोने का इस्तेमाल हुआ था। झण्डा बनवाने जानेवालों में जगमनन साह, जोगी चौधरी, सिपाही सिंह, गुदानी सिंह प्रमुख थे। बनारस से झण्डा जब तैयार होकर गाँव सिमरी में आया, तो महावीरजी की आँखों को बनाने के लिए नवाब साहब ने अपनी तिजोरी से दो मनके दिए, जो आज बेशकीमती हैं।

इस गाँव में पचास घर उज्जैनी राजपूत बिरादरी के हैं, जो पूरब और पश्चिम पट्टियों में बसे हैं। पूरब पट्टी में चौरस आंगन वाला बैठकानुमा एक घर है, जिसे 'दालान' कहा जाता है। वहीं पर झण्डा उठाने की परम्परागत रस्म निभाई जाती है। दालान के पास महावीरजी के स्थान से झण्डा उठता हुआ पूरे गाँव में जुलूस की शक्ल में घुमाते हुए नेशनल हाइवे के पास अखाड़े तक ले जाया जाता है।

जुलूस के अखाड़े पर पहुँचते ही स्थानीय मुहर्रम कमेटी के अखाड़े द्वारा सलामी दी जाती है। इस पूरे उत्सव के आरम्भ से अन्त तक बेलग्रामी परिवार के लोग अपनी भागीदारी बनाये रखते हैं। अखाड़े पर कुश्ती में भाग लेने के लिए आस-पास और दूर-दूर तक के पहलवान आते हैं और इनाम पाते हैं।

अखाड़े के परम्परागत मालिक सबसे पहले स्व. बसगीत सिंह थे। उनके बाद से उनके परिवार के ज्येष्ठ पुत्र इन कर्तव्यों का निर्वाह करते आ रहे हैं। उस दिन पश्चिम टोले के लोग आकर उनको पगड़ी और लंगौटा उपहार में देते हैं। बसगीत सिंह के बाद अखाड़े के उत्तराधिकारी क्रमशः सरयू सिंह और राजेन्द्र सिंह हुए।

इस समय धीरेन्द्र सिंह अखाड़े के मालिक हैं, जो राँची में बी.एस.एफ. में इन्स्पेक्टर पद पर कार्यरत हैं तथा महावीरी झण्डा उठने के समय अपने दायित्व को निभाने प्रतिवर्ष दशहरे में छुट्टी लेकर चले आते हैं।

ग्रामीण बताते हैं कि सिमरी गाँव, जहाँ हिन्दू मुस्लिम के पर्व को अपने पर्व की तरह मानते हैं और मुस्लिम हिन्दू पर्व को अपना पर्व मानते हैं। महावीरी झण्डा के जुलूस में आगे चलनेवालों में मस्जिद के पेशे इमाम दूर से ही पहचाने जा सकते हैं। महावीरी झण्डा को लेकर चलनेवाले हिन्दू मुहर्रम के ताजिये में भी उसी जोश-खरोश के साथ सम्मिलित होते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता का यह अद्‌भुत मेल बड़ा ही रोमांचकारी है।

कहा जाता है कि परम्परागत रूप से जुलूस और अखाड़े का झण्डा, मुद्‌गर, पोशाक, सिन्दूर, लंगौटा, छत्र आदि सुरक्षित रखी गई वस्तुओं को उस दिन निकाला जाता है। दशहरे के समय मनाये जाने वाले इस महावीरी झंडे में तीर-तलवार, लाठी-गदका-बनेठी आदि खेल भी खिलाड़ी दिखाते हैं। 'बजरंगबली की जय' से वातावरण मुखरित हो जाता है। हनुमान्-भक्तों की भीड़ से गाँव की सड़क भर जाती है। इस दिन महावीरी झंडे के जुलूस में भाग लेने के लिए आबाल-वृद्ध, नर-नारी अत्यन्त सज-धजकर दूर-दूर के गाँवों से आते हैं। वे अपने साथ महावीरी पताका भी जुलूस में लाते हैं। भजन-कीर्तन मण्डली, खिलाड़ियों के खेल, बजरंगी का स्वांग बनाकर नृत्यरत नर्तकों की मण्डली और दर्शकों की भीड़ सभी एक अनोखा परिवेश संघटित करते हैं।

एक दिन का यह आयोजन अपने ढंग का अनूठा होता है। वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा हनुमान जी की विशेष पूजा की जाती है और पूर्ण उत्साह एवं गौरवपूर्वक महावीरी झंडे का जुलूस निकाला जाता है।

बनारस से बनाये गये उस झण्डे के बारे में गाँव के युवा सत्येन्द्र सिंह ने कई मुख्य और रोचक बातें बतायीं। अपने दादा के कथनानुसार उन्होंने कहा कि वह झण्डा सन् 1913 में बनारस में बना था। काफी पुराना होने के कारण वह कुछ फट-सा गया है, परन्तु हनुमानजी की प्रतिमा के उकेरे गये सोने के सभी तार यथावत् हैं। दो मनकों से बने आँख में से एक मनका गायब हो गया है। उनका कहना है कि यह झण्डा पहले अनगराहित चौधरी के यहाँ रखा जाता था, परन्तु 25 वर्ष पहले उनके यहाँ पड़ी डकैती में वह झण्डा भी चोरी चला गया। चोरों ने उसे अनुपयोगी समझकर ईख के खेत की मेड़ पर छोड़ दिया। इस प्रकार वह झण्डा बच गया।

सत्येन्द्रजी ने बताया कि पुराना झण्डा अब इस्तेमाल में नहीं आता, वह अब धरोहर के रुप में है। उसके बदले अब नया झण्डा, जो दस साल पहले बना था, उसे ही उपयोग में लाया जाता है। पुराना झण्डा और नया झण्डा उस दिन (दशहरा) पूजा के समय रखा जाता है। पंडित द्वारा उसकी पूजा की जाती है। उन्होंने कहा कि पुराना और नया झण्डा अब उनके यहाँ अलग कोठरी में सुरक्षित है, जिसकी सुबह-ज़ाम नियमित पूजा होती है, धूप-दीप, गूगूल-अगरबत्ती जलाया जाता है और सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है।

बेलग्रामी परिवार के बुजुर्ग सैयद इख्तिखार हसन बेलग्रामी उर्फ रसूल भाई का कहना है कि सिमरी गाँव के महावीरी झण्डा की शोभा-यात्रा तथा मुहर्रम के ताजिये का जुलूस शुरू से ही काफी मशहूर रहा है, जिसमें दोनों समुदाय के लोग दूर-दूर से पधारकर इसमें भागीदारी करके गौरवान्वित होते हैं। उन्होंने उम्मीद जताई कि आगे आने वाली पीढ़ियाँ इन गौरवशाली उत्सवों को इसी उमंग के साथ मनाती रहेंगी।

सिमरी गाँव के महावीरी झंडे की यात्रा का समापन गाँव से पूरब नेशनल हाइवे के किनारे महावीरजी के अखाड़े पर होता है। परन्तु नेशनल हाइवे के प्रस्तावित दोहरीकरण की योजना से अखाड़े की जमीन के अस्तित्व पर खतरा भी मंडराने लगा है, क्योंकि फोर लेन की यह सड़क होते ही यह भूमि ठीक बीच में आ जायेगी और मालवाहक गाड़ियाँ अखाड़े की धरती को रौन्दती हुई दौड़ती रहेंगी। मुस्लिम अखाड़े के खलीफा मजहर आलम इस खतरे से आशंकित होते हुए कहते हैं कि सरकार के साथ ग्रामीण इस स्थिति से उदारतापूर्वक निपटने का प्रयास करेंगे। अन्यथा विषम हालत में अखाड़ा की भूमि को वैदिक अनुष्ठान के द्वारा अन्यत्र स्थानान्तरित करना पड़ सकता है।

अतएव बेलग्रामी नवाब द्वारा शुरू किया गया सिमरी का महावीरी झण्डा उत्सव आज भी सांप्रदायिक और जातीय उन्माद के घनघोर अन्धेरे माहौल में प्रकाश की उजली लकीरों की तरह उम्मीदों से भरा है। जिसको संरक्षण-संवर्धन-प्रोत्साहन किए जाने की आवश्यकता है।

ग्राम- मैरा, पो. सैसर, धनसोंई,
जिला. रोहतास

❖

व्यावहारिक वेदान्त के प्रतिष्ठाताः स्वामी विवेकानन्द

डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

स्वामी विवेकानन्द आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय दोनों प्रकारों के सन्तों के रूप में हमारे बीच संपूज्य हैं। उनके विचार से भगवान् न केवल मठों-मन्दिरों में शोभायमान हैं बल्कि दलितों, दरिद्र-दुखियों, अशक्तों के रूप में हमारे-आपके बीच सर्वत्र दृश्यमान हैं। दलितों की हीन-भावना को दूर कर भूखों की, भूख दूर कर, अशक्तों को सहारा देकर हम ईश्वर की परम कृपा के भागी बन सकते हैं। दर्द से चीखती मानवता के होठों पर खुशियाँ बिखेर कर हम आनन्दघन भगवान् की प्राप्ति के द्वार खोल सकते हैं। डा. भुवनेश्वर ने अपने इस आलेख में समासतः इन्हीं भावनाओं को त्वरा दी है। आशा है, पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

जिस प्रकार ब्रह्मा के कमण्डल से गंगा का पावन स्रोत निकला और भगीरथ ने उसे जन-जन के कल्याण के लिए प्रयोग किया, उसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस के कमण्डल से व्यावहारिक वेदान्त-दर्शन को प्राप्त कर स्वामी विवेकानन्द ने उससे पूरे मानव समाज का कल्याण किया है। स्वामी विवेकानन्द के जीवन-दर्शन से यह स्पष्ट है कि उन्होंने वेदान्त धर्म के व्यवहार पक्ष को जन-जन तक पहुँचाने के लिए ही देश-विदेश का भ्रमण किया। उनके अनुसार प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। वाह्य एवं अन्तःप्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

उनके कथनानुसार कर्म, उपासना, मन, संयम अथवा ज्ञान- इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ। बस यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान पद्धति, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया-कलाप तो उसके गौण विवरण मात्र हैं।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था-

'जगत् के सभी धर्म-मतों को एक अखण्ड सनातन धर्म का अंश मानते हुए सभी धर्मावलंबियों के बीच आत्मीयता की स्थापना के लिए ही तो मिशन की स्थापना हुई है। हमें मन्दिर व प्रतिमा की सीमा से भगवान् को बाहर लाकर 'यत्र जीवः तत्र शिवः' के मन्त्र के साथ विराट् शिव की पूजा की ओर अग्रसर होना होगा। अपनी मुक्ति के लिए भक्ति की स्वार्थ-बुद्धि को छोड़कर जनता-जनार्दन की सेवा में हमें लगना होगा। रामकृष्ण परमहंस बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय के लिए ही इस धरा पर अवतरित हुए थे।'

''मिशन का उद्देश्य दूसरों के हितार्थ प्राण

देने, जीवों के गगनभेदी क्रन्दन को दूर करने, विधवाओं के आँसू पोछने, पुत्र के वियोग में तड़पती माता के प्राणों को शान्ति देने के लिए तथा जन साधारण को जीवन-संग्राम के लिए तैयार करना ही हमारा धर्म है। यह काम केवल सभा-समितियों से नहीं हो सकता। हम असहाय लोगों की भावना का आदर करके ही सच्चे धर्म का पालन कर पाएँगे।''

''मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारा धर्म केवल रसोई घर में ही रह गया है। 'किसको छुएँ किसको न छुएँ' के धर्म ने तो हमको डुबोकर रख दिया है। हमें प्राणिमात्र में ब्रह्म का निवास मानकर उसे पूजना होगा। यही वेदान्त-दर्शन का सार है। आजकल धर्म केवल प्राणविहीन आचार-नियमों का संग्रह और कुसंस्कारों का लीला स्थल बनकर रह गया है। यही कारण है कि भारत में आज निर्धनता का ताण्डव नृत्य दिखाई दे रहा है। यदि हम दु:खी मानव के दु:खों को दूर करने की चेष्टा न करें तो हमारा पाण्डित्य व्यर्थ है।''

स्वामीजी सर्वदा आर्त्तप्राणी के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखते थे। एक बार पंजाब के कुछ पण्डित धर्म-चर्चा के लिए स्वामीजी के पास आए थे। उन दिनों पंजाब में भीषण अकाल था। अत: स्वामीजी ने चर्चा का अधिक समय अकाल-पीड़ितों की जानकारी प्राप्त करने में लगा दिया। स्वामीजी से विदा लेते समय पंजाबी पण्डितो ने विनम्रता से निवेदन किया कि हम तो आपसे धर्म का गूढ़ रहस्य जानने आए थे। आप तो साधारण चर्चा करके ही रह गए।

स्वामी जी कुछ देर चुप रहे, फिर गम्भीर व ओजपूर्ण वाणी में बोले- ''जहाँ तक धर्म की बात है, हमारा धर्म यही कहता है कि हमारे देश में कोई भी बच्चा भूखा न रहे। हर हाथ को काम हो, हर भूखे को रोटी मिले, हर नंगे को कपड़ा मिले, हर बीमार को दवा मिले। यही तो हमारा सच्चा धर्म है। मैं समझता हूँ कि इसके अतिरिक्त अगर किसी दूसरे धर्म की बात की जाती है तो धर्म नहीं ढकोसला मात्र है। भगवान् रामकृष्ण कहा करते थे कि खाली पेट में धर्म नहीं होता। साधारण अन्न व मोटे वस्त्र की व्यवस्था तो प्रत्येक के लिए अनिवार्य है। भूखे व्यक्ति को धर्मोपदेश देना मूर्खता है।''

स्वामी विवेकानन्द जी राष्ट्रसेवा को ही धर्म मानते थे। उनका कहना था, आगामी पचास वर्षों के लिए यह जननी-जन्मभूमि या भारतमाता ही हमारी आराध्य देवी बन जाए। तब-तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवता को हट जाने से कुछ भी हानि होनेवाली नही। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर के लिए लगाओ। वे ही हमारे जाग्रत देवता हैं। सर्वत्र उनके हाथ हैं, सर्वत्र उस पैर हैं और सर्वत्र उनके कान है। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिस व्यर्थ के देवी-देवता को हम देख नहीं सकते, उसके पीछे तो हम व्यर्थ दौड़ रहे हैं और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे है, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देवी-देवता को पूजने योग्य होगे, अन्यथा नहीं। आप मील भर चल नहीं सकते, हनुमानजी की भाँति एक छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा रखते हैं। ऐसा नहीं हो सकता। दिन-भर तो दुनियाँ के सैकड़ों प्रपंचों में लिप्त रहोगे, कर्मकाण्ड में व्यस्त रहोगे और शाम को आँख मूँदकर, नाक दबाकर साँस चढ़ाने और उतारने से कुछ नहीं होगा। जिसे ग्रहण करने और अपनाने की आवश्यकता है, वह है चित्त शुद्धि। इसकी प्राप्ति कैसे होगी? इसका उत्तर यह है कि सबसे पहले उस विराट् की पूजा

करो, जिसे अपने चारों ओर देख रहे हो। पूजा करो, मनुष्यों एवं पशुओं की, जिन्हें आप आगे-पीछे, आसपास देख रहे हो, ये ही हमारे ईश्वर हैं।

हमें अध्यात्मिकता की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी रोटी की। गरीब बेचारे भूखे मर रहे हैं और उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश देने का हम दुराग्रह कर रहे हैं। मत-मतान्तरों से पेट नहीं भरता। हमारे ये दोष बहुत ही प्रबल हैं। पहला दोष हमारी दुर्बलता है दूसरा अपने ही आत्मस्वरूप भाइयों से घृणा करना है। इस हृदयहीनता के रहते हम किसी धर्म का पालन नहीं कर सकते। लाखों मत-मतान्तरों की बात कह सकते हैं, करोड़ों सम्प्रदाय संगठित कर सकते है; परन्तु जबतक पर पीड़ा को अपनी पीड़ा नहीं समझोगे तब-तब धर्म के मूल तक नहीं पहुँच सकते। वैदिक उपदेशों के अनुसार जबतक स्वयं यह नहीं समझते कि वे साधारण प्राणी तुम्हारे ही शरीर के अंश है, तबतक धर्मशास्त्र की चर्चा और पठन-पाठन व्यर्थ है।

धर्म का सार यही है कि घोर से घोरतम अज्ञान-तिमिर में डूबे हुए लाखों साधारण भारतीयों की उन्नति साधना के लिए उनके समीप जाओ और उनको अपने हाथ का सहारा दो। भगवान् श्रीकृष्ण का यह कथन ही धर्म का सार है-

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थितः॥

गीता 5:19

अर्थात् जिनका मन इस साम्यभाव में अवस्थित है, उन्होंने इस जीवन में ही संसार पर विजय प्राप्त कर ली है। चूँकि ब्रह्म निर्दोष और सबके लिए सम है, इसलिए वे ब्रह्म में अवस्थित हैं।

इसी तरह स्वामी विवेकानन्द के मत में दरिद्रनारायण की सेवा ही वास्तव में सनातन एवं सच्चा धर्म है।

डा. भुवनेश्वर प्रसाद मुरुमैल
ग्राम+पो.-मटिमारी, जिला- सुपौल

❖

महावीर मन्दिर की विशेषताएँ

1) यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः (वैशेषिक धर्म)
2) बगैर चन्दा माँगे- स्वेच्छा से लोगों ने दान दिया।
3) कार-सेवा भी काफी हुई।
4) मन्दिर की शून्य से सौ करोड़ की परिसम्पत्ति।
5) सभी देवताओं की मूर्ति/कर्मकाण्डीय विधान रामायण का सस्वर पाठ।
6) स्वामी बालानन्दजी महाराज द्वारा 1730 ई. के लगभग में स्थापित।
7) परोपकार की प्रबल भावना का पक्षधर।
8) चार अस्पताल और अनेक निर्माणाधीन।
9) समाज के हर वर्ग से मन्दिर का सम्पर्क। दलित अर्चक की नियुक्ति।

'रामलला नहछू' का काव्य-सौन्दर्य

❑ युगल किशोर प्रसाद

गोस्वामी तुलसीदास रचित 'रामलला नहछू' अपने कलेवर में अति लघु होते हुए भी अर्थ-भंगिमा एवं शिल्प तत्त्व की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में शीर्षस्थानीय है। यह भारतीय सामाजिक लोक-जीवन पर आधारित एक सांगीतिक काव्य है, जिसमें महाकवि ने श्रीराम-विवाह के अवसर की पृष्ठभूमि में इस लोकगीत को आकार दिया है। सोहर महिलाओं का एक अति प्रसिद्ध गीत है। यह मूलत: 'शोकहर' है, जो जन्म के अवसर पर नवजात शिशु की माता की प्रसव-पीडा को हरने के लिए तथा मंगलमय वातावरण तैयार करने के लिए गाया जाता है। किन्तु इसकी व्यापकता इतनी है कि जन्म के अतिरिक्त, कर्णवेध, उपनयन, विवाह आदि के अवसर पर भी सोहर का प्रचलन रहा है। इस मंगलगीत के द्वारा स्त्रियाँ विधानगत भावभूमि को नि:सन्देह अपने सुरीले कण्ठों से स्फुरित करने में समर्थ होतीं हैं। कुछ इन्ही भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रस्तुत लेख का वर्ण्य विषय है। लेखक श्री युगल किशोर प्रसाद ने इसके तथ्य स्पष्टीकरण में अपनी प्रौढ़ लेखनी का निश्चित ही कमाल दिखाया है।

'मानसकार' कविचक्रचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा, आलोचकों की दृष्टि में, रचित निम्नांकित एक दर्जन प्रामाणिक कृतियाँ हैं- (1) रामचरितमानस (2) रामलला नहछू (3) वैराग्य सन्दीपनी (4) बरवै रामायण (5) पार्वती मंगल (6) जानकी मंगल (7) रामाज्ञा प्रश्न (8) दोहावली (9) कवितावली (10) गीतावली (11) कृष्ण गीतावली और (12) विनय पत्रिका।

रचनाक्रम में उक्त सूची के अनुसार 'रामलला नहछू' दूसरे स्थान पर है जो इस आलेख का प्रति प्रतिपाद्य है। 'रामलला नहछू' एक लघु खण्डकाव्य है, जिसकी रचना प्रो. डा. रामदेव प्रसाद के शब्दों में, 'हंसगति छन्द में हुई है। इस खण्डकाव्य के उद्धृतांशों से इस छन्द की बुनावट का आभास विज्ञ पाठकों को मिल जाएगा।

इस खण्डकाव्य की कथावस्तु (विषय-वस्तु) संक्षेप में इस प्रकार है- ''श्री रामचन्द्र और लक्ष्मणजी मिथिला में महर्षि विश्वामित्र के साथ वास कर रहे थे और वहाँ धनुषयज्ञ में पराक्रम दिखाने के फलस्वरूप श्री राम का जनक दुलारी सीता से विवाह निश्चित हो जाने पर, महाराज जनक का निमन्त्रण पाकर अयोध्या से बारात वहाँ आ गई थी, अत: यह नहछू, प्रो. रामदेव प्रसाद के अनुसार, विवाह के समय का नहीं हो सकता। यह कर्णवेध, यज्ञोपवीत के अवसर पर संपन्न किया जाने वाला सामाजिक विधान है। इस खण्डकाव्य में बारात आगमन के पहले चौके पर बैठने पर नाइन वर

के पैरों में महावर लगाती है और नरहनी को पैरों के नखों से इस प्रकार छुआती है मानो नख काट रही है। इसी प्रथा को नहछू कहते हैं।

इस प्रसंग को गोस्वामीजी ने अपने खण्डकाव्य में प्रस्तुत किया है। इसकी भाषा अवधी है। इसमें संस्कृत के साथ-साथ उर्दू शब्दावली भी पायी जाती है। उस समय देश पर मुगलों का शासन था और उर्दू भाषा का चलन था, इसलिए उर्दू शब्दों का आना स्वाभाविक ही माना जाएगा। उर्दू का प्रयोग अवलोकनीय है-

'दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।।6।।

भइ निवछावरि बहु विधि जो जस लायक हो।।16।।

कहीं-कहीं तो कवि ने उर्दू शब्दों में हिन्दी का उपसर्ग लगाकर शब्दों का निर्माण किया है, जैसे 'मौज' में 'सु' जोड़कर 'सुमौज' बनाना-

'तापर करहिं सुमौज, बहुत दुख खोवहि हो।'

सद्गुरु शरण अवस्थी ने इस खण्डकाव्य की भाषा की बावत लिखा है कि इसकी 'भाषा, फुदकती चलती है। इसकी भाषा में नर्तकी के पाद-विक्षेप का सा वेग है। प्रत्येक पंक्ति में यौवनोचित विनोद और प्रकाश झलकता है।' भाषा-सौन्दर्य ही इस खण्डकाव्य का 'काव्य-सौन्दर्य' है। क्योंकि अभिव्यक्ति का माध्यम तो कोई न कोई भाषा ही होती है।

डॉ. उदय भानु सिंह के अनुसार, इसमें अलंकारों का कम प्रयोग किया गया है और इसकी भाषा धारावाहिक तथा प्रसन्न है। (डा. उदयभानु सिंह:'तुलसी काव्य मीमांसा', पृ. 91)

इस सम्पूर्ण पुस्तक में मात्र 'सोहर' छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसकी संख्या बीस है। मांगलिक अवसर के लिए 'सोहर' छन्द का चुनाव जहाँ एक ओर गोस्वामीजी का नारी मनोविज्ञान तक पहुँच दिखाता है, वहीं दूसरी ओर भाषा तथा छन्द का सामंजस्य भी प्रतिबिम्बित करता है। 'सोहर' का प्रयोग विषयानुकूल और अवसरानुकूल भी है।

इस खण्डकाव्य में मुख्यत: दो रसों- शृंगार और हास्य का अच्छा परिपाक हुआ है। शृंगार तो रसराज है ही, यह अवसरानुकूल भी है। विवाह का प्रसंग है। हास्य-विनोद का यह मांगलिक अवसर है। 'मानस' में जहाँ कवि का शृंगार-वर्णन अत्यन्त मर्यादित है, वहाँ 'नहछू' का शृंगार-वर्णन विषयानुकूल, अवसरानुकूल है। विषय-वस्तु के महत्त्व को देखते हुए यह कहना उपयुक्त है कि कवि तब सफल माना जाता है जब वह परिवेश के अनुकूल अपने प्रतिपाद्य को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर सकने में सफल होता है। इस दृष्टि से 'नहछू' एक सफल कृति हैं। भाषा-शैली की दृष्टि से यह 'रामाज्ञा-प्रश्न' की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। इसमें लोक-संस्कृति के आधार पर शृंगार-वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है जो हृदयग्राही भी है, यथा-

कटि के छीन वरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्र बदनि मृगलोचनि सब रसखानिहिं हो।।
नैन विसाल नउनिया भौं चमकाबइ हो।
देह गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो।।8।।

इसमें हास्य रस की भी सुन्दर अवतारणा हुई है, यथा-

काहे रामजिउ साँवर लछिमन गोर हो।
कीदहुँ रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो।।12।।

अनुरणनात्मक शब्द के प्रयोग से काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। 'मानस' तो महाकाव्य है, पर इस छोटे से खण्डकाव्य में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग काव्य-कला की दृष्टि से उल्लेखनीय विशेषता है, यथा-

कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो।''

इस खण्डकाव्य में जनसाधारण की भाषा का प्रयोग अधिक हुआ है, लेकिन कहीं-कहीं

संस्कृत शब्दावली के भी दर्शन हो जाते हैं, इसके अलंकार भी सहजता से आ गये हैं-

रूपक-

गजमुक्ता हीरामनि चौक पुराइय हो।
देइ सुअरघ राम कँह लेइ बैठाइअ हो।
कनक खंभ चहु ओर मध्य सिंहासन हो।
मानिक दीप वराय बैठि तेहि आसन हो।।4।।

चन्द्रवदनि मृगलोचनी सब रसखानिहि हो ।।8।।

उपमा-

कनक-चुनिन सों लसित नहरनी लिये कर हो।।10।।

उत्प्रेक्षा-

नख काटन मुसुकाहि वरनि नहिं जातहिं हो।
पदुम-राग-मनिमानहुँ कोमल गातहिं हो।।15।।

दूलह के महतारि देखि मन हरषइ हो।
कोटिन दीन्हेउ दान मेघ जनु बरसइ हो।।19।।

'रामचरितमानस' में पौराणिक बिम्बों की भरमार है। 'नहछू' में सामाजिक बिम्बों की माला मिलती है। 'चन्द्रवदनि', 'मृगलोचनि' आदि सौन्दर्य-विशेषणों से काव्य में विशेषता आ गई है। वक्रोक्ति-शैली व्यंग्यमय है। ध्वन्यर्थ व्यंजना भी भाषा को सशक्त बनाती है। पात्रानुसारी भाषा से काव्य में विशेषता आ गयी है। नाइन तो सबके घर जाती है, अतः उसकी भाषा में व्यंग्योक्ति की शक्ति अधिक है। जो बात अमर्यादित होने के कारण खुद औरतें नहीं कह सकती हैं, नाइन धड़ल्ले से कह देती है-

काहे रामजी साँवर लछिमन गोर हो।
कीदहुँ रानि कौसिलहिं परिगा भोर हो।।२।।

इस काव्यकृति में कवि की लोक सुधार-भावना अधिक स्पष्ट है। आद्यन्त इसकी भाषा लोक-धर्म पर टिकी हुई है। इस कारण, भाषा में प्रवाह एक समान है। इसकी प्रत्येक पंक्ति को पढ़ते ही ऐसा लगता है जैसे भाषा किसी ताल पर नृत्य कर रही है। प्रयुक्त छन्दों को पढ़कर यह आसानी से अनुभव किया जा सकता है। इसलिए इसमें सांगीतिकी भी आ गई है।

'मानस' की तुलना में भाषा की चित्रमयता इस पुस्तक में उस कोटि की ओर उतनी संख्या में तो नहीं है, पर कहीं-कहीं इसका प्रयोग अवश्य मिलता है, यथा-

१. आनन्द हिय न समाइ देखि रामहिं पर हो।।10।।
२. केसरि परम लगाय सुगन्धन बोरा हो।।16।।

कुल मिलाकर 'नहछू' की शैली में शिथिलता नहीं है। यह कवि के विस्तृत लोकजनित व्यावहारिक ज्ञान का एक नमूना है। इस कविता में तुलसी का कवि-व्यक्ति अधिक मुखरित है। पुरातन वर्णनाओं की बाधा कवि के सामने नहीं है। इसमें लोक जीवन की झाँकी का सौन्दर्य पूरित चित्रण हुआ है।

निष्कर्षतः रामलला नहछू' की भाषा में कवि का विनोदी तथा संगीतज्ञ का रूप मिलता है। तुलसी के पहले भी 'नहछू' सम्बन्धी गीत प्रचलित थे, पर उन गीतों में कुप्रवृत्तियाँ अधिक थीं। 'नहछू' काव्यकृति में उन कुप्रवृत्तियों का शमन हो गया। 'रामलला नहछू' के गीत मांगलिक अवसरों पर गाने योग्य हैं। इस कृति का सामाजिक जीवन में बड़ा महत्त्व है।

न्यू विग्रहपुर, बिहारी पथ
पटना-1
सचल भाष- 9279851628

❖

धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय और लोक-जीवन

डा. विनय कुमार सिंह

> संसार बड़ा विचित्र है और मानव जीवन विचित्रताओं में और भी विचित्र है। एक ही व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में कई चरित्रों को जीता है, कहीं उसे समझौता करना पड़ता है तो कहीं मुठभेड़ भी।
>
> प्रस्तुत आलेख मानव मनोदशा की उन्हीं बिडम्बनाओं की नख-शिख व्याख्या है। कहीं हमें तथाकथित धर्म विवश करता है तो कहीं संस्कृति। और कहीं तो हम 'वदतो व्याघात:' की स्थिति में खड़े अपने आप को अतिशय दुर्बल पाते हैं। सचमुच, आज लोक-जीवन 'वदतो व्याघात:' की जड़ता में ही जी रहा है। हम ऊहापोह के प्रबल प्रभञ्जन में हताश खड़े हैं। कहीं डालियाँ टूट रहीं हैं तो कहीं जड़ें उखड़ रहीं हैं, और हम हैं कि पथरायी आँखों से सबकुछ देख रहें हैं।
>
> डा. विनय कुमार ने प्रस्तुत आलेख में हमें यथाशक्ति दिशा दिखाने का स्तुत्य कार्य किया है। देखें, हम कहाँ तक लाभान्वित होते हैं।

धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय और लोक-जीवन, मानव तन्त्र की उपज है। इस शीर्षक पर विमर्श के क्रम में मानव-सृष्टि की दार्शनिक मीमासा से आरम्भ करना यौक्तिक है।

बाल गंगाधर तिलक ने गीता-रहस्य शीर्षक पुस्तक में भारतीय दर्शनों के न्याय से परमाणुवाद, सांख्य से प्रकृति-पुरुष सम्बन्ध विवेचन और वेदान्त से अध्यात्मक का प्रसंग संयोजित करके मानव-यंत्र का परिचय प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ को इन्होंने हिन्दू-फिलॉसफी ऑफ एथिक्स कहा है। महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन में परमाणु को जीवन, जगत्, आत्मा, सब का कारण बताया है।

सांख्य दर्शन में महर्षि कपिल ने परमाणु को प्रकृति का तत्त्व बताया। परमाणु तीन प्रकार के हैं- सत्त्व, रजस् और तमस्। प्रकृति की भी तीन अवस्थाएँ हैं- अव्यक्त, प्रवृत्त्यवस्था एवं निकृष्टावस्था। जब तीनों कोटि के परमाणुओं की मात्रा बराबर होती है तब प्रलय होता है और सृष्टि समाप्त होकर प्रकृति की निलयावस्था होती है। यही अव्यक्त प्रकृति है। जब परमाणुओं की मात्रा में घट-बढ़ होने लगता है तब सृष्टि की प्रवृत्ति होती है। इसमें प्रथम विकार महान् (बुद्धितत्त्व) होता है। इसका अगला विकास अहंकार है। अहंकार से पंचतन्मात्राएँ विकसित होती हैं। अव्यक्त, महत्, अहंकार, तन्मात्राएँ (रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श) यह इन्द्रिय रहित सृष्टि का अष्टधा रूप होता है। अहंकार का अगला विकास ग्यारह तत्त्वों के एक गुच्छ में होता है। इसका प्रधान तत्त्व मन है। इसके साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच-तन्मात्राओं से जुड़ती हैं। रूप से नेत्र, रस से

जिह्वा, गन्ध से नासिका, शब्द से कर्ण और स्पर्श से त्वचा का योग होता है। मन में इच्छा और क्रिया की शक्ति होती है। ज्ञानेन्द्रियाँ इच्छा उत्पन्न करती हैं और इच्छा को क्रिया में प्रकट करनेवाली पंचकर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पाद, जिह्वा, गुदा, मूत्र मार्ग) जुड़ती है। मन राजा है। ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य संसार से जुड़कर अपने विषयानुरूप सूचनाएँ लाती हैं। मन के इच्छानुसार कार्य सम्पादन के आदेश से कर्मेन्द्रियाँ कर्मण्य होती हैं। यह सूक्ष्म शरीर है। इसमें उन्नीस तत्त्व है। इसके बाद क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर) ये पंच महाभूत मिलकर स्थूल शरीर प्रकट करते हैं।

ऊपर प्रकृति की प्रवृत्यवस्था मैं चौबीस तात्त्विक विकास के द्वारा प्रकृति के चौरासी लाख योनियों के पिण्ड बन जाते हैं। पुरुष की अनन्त इकाइयाँ गतिमान हैं। वह निष्क्रिय और चेतन है। प्रकृति अक्ष, अन्धी और जड़ है। इसके पिण्ड प्रवृत्यवस्था में आकर्षण से पुरुष की एक इकाई को आकर्षित करते हैं। अनन्त इकाइयों में से एक पुरुष उन पिण्डों की किसी इकाई में बँध जाता है। तब उसमें जीव प्रकट हो जाता है।

चौरासी लाख योनियों में मानव श्रेष्ठ है। इसकी प्रत्येक इकाई में बँधा जीव माया मुग्ध होता है। वह पुरुष की प्रकृति बद्धता है। यही जड़ (प्रकृति) और चेतन (पुरुष) की ग्रन्थि युक्त व्यष्टि इकाई है। इसमें अहंकार मन की घनीभूत स्थिति में होता है। अहंकार व्यक्ति का अहं बोध है। ज्ञानेद्रियाँ मन को बाह्य संसार से जोड़ती रहती हैं। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के के आधार पर सुन्दर और असुन्दर का विलगाव करके सुन्दर मन की रुचि से जुड़ता है, रीझता है और असुन्दर मन की अप्रिय सूचना से खीझता है। यही रीझ सुख उत्पन्न करता है और खीझ से दु:ख होता है। उपनिषद् सुख से राग और दु:ख से द्वेष की व्यष्टि और समष्टि प्रकृति का निर्देश करते हैं।

सांख्य दर्शन न्याय के परमाणुवाद को पुरुष और प्रकृति के योग की व्याख्या करके सृष्टि का विश्लेषण करता है। यह विश्लेषण बहुत ही गम्भीर और यौक्तिक हुआ है किन्तु एक प्रश्न शेष रह गया कि इन दोनों को उत्पन्न कौन करता है। यह निर्णय वेदान्त में किया गया। वेदान्त ने परमात्मा नामक छब्बीसवें तत्त्व को सृष्टि का उपादान और निमित्त कारण बतलाकर विश्लेषण को पूर्णता प्रदान की। वेदान्त की प्रशस्ति में कहा गया है-

तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बूको विपिने यथा।
न गर्जति महातेजा यावद् वेदान्तकेसरी।।

अर्थात् सभी शास्त्र जंगल में सियार की तरह तभी तक गरजते हैं जबतक महान् तेज से युक्त वेदान्त रूपी सिंह की गर्जना नहीं होती।

न्याय और सांख्य के विश्लेषण नास्तिक हैं। वेदान्त ने आस्तिकता का आधान करके अध्यात्म का स्वरूप निश्चित किया। ईश्वर की सत्ता में आस्था और शास्त्रीय उपपत्ति में विश्वास ही आस्तिकता है।

व्यष्टि इकाई में मानव का मन दो प्रकार की बुद्धि से इच्छा और क्रिया को संवलित करता है। नास्तिक बुद्धि वाला व्यक्ति मोहमुग्ध होता है। आस्तिकता मोह से मुक्ति का उपाय प्रकट करती है। वेदान्त ने निर्गुण और सगुण दो प्रकार से परमात्म तत्त्व को विश्लेषित किया। 'ब्रह्म सत्य है', यह वेदान्त की निर्भ्रान्त मान्यता है। वेदान्त की व्याख्या करके प्रथमत: आचार्य शंकर ने ''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' का सूत्र दिया। ब्रह्म निराकार और निर्गुण है। वह ध्यान और उपासना का विषय है। इसके लिए योग-दर्शन का अवलम्ब लिया गया। योग सूत्र के संगठनकर्त्ता एवं व्याख्याता महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग की व्याख्या की है। योग का लक्ष्य है जीव का परमात्मा से जुड़ना। इसके दो खण्ड हैं- हठयोग और राज

योग। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पाँच हठयोग के क्रम हैं। इनके आचरण से योगी हठपूर्वक शरीर और मन एकाग्र करके शरीर को बाह्य प्रवृत्तियों से खीचकर मन को वश में करके इच्छा और क्रिया की गति को आत्मतत्त्व में केन्द्रित करता है। इसके बाद राजयोग का क्रम है ध्यान, धारणा और समाधि। तीनों का क्रम चेतना को ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतम गति देकर परमात्म तत्त्व से जुड़ना है। इस क्रिया साधना में कर्म तक की युक्तियाँ योग कहा गया है। ''योग: कर्मसु कौशलम्।'' इसकी साधनावस्था यानी प्रयत्न पक्ष का क्रम हठयोग है और सहज प्राणतत्त्व को संयोजित करके स्वान्त:स्थ ईश्वर से जुड़ना राज योग है। इसे ही कहा गया है- ''ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिन:।। इसमें वाणी परा से पश्यन्ती दशा में वायु के सहारे अधोमार्ग ग्रहण करती हुई, कुण्डलिनी जागृत करती है और अष्टचक्र का भेदन करती हुई सहस्रारचक्र में स्थित परमात्मतत्त्व का दर्शन करती है। वहाँ वाणी की मध्यदशा अनुभूति का संचय करती है और मन एवं वाणी से अगम अगोचर को जानती है और पाती है। योग का दूसरा क्रम भावयोग है। हठयोग के उपरान्त काया को वश में करके बुद्धि तत्त्व को जाग्रत रखना भाव योग की पूर्णवस्था है, इसमें भावक निलयावस्था की आनन्दानुभूतियों में आत्मभाव को विलीन नहीं करके विशुद्ध चैतन्य को अनुभूतियों में बाँधता और जाग्रत समाधि में अनुभूति संचय करके लोक कल्याण के लिए वापस आ जाता है। भाव योग की इस अवस्था में ध्यान, धारणा और समाधि होता है। समाधि में इच्छा और क्रिया आत्म सम्मोहन की विशुद्ध चेतना और लोक वेदना संजोकर व्यक्ति को कवि बनाती है। योगी अखण्ड और अपार समाधिस्थ होकर निर्विशेष हो जाता है। यह जीवन का निवृत्ति मार्ग है। वेदान्त दर्शन को शांकर मत ने 'ब्रह्म सत्य'। को इसी रूप में जाना। इसमें 'अस्ति' (ब्रह्म का अस्तित्व) बोधगम्य है।

भारतीय दर्शनों में मानव तंत्र की रचना का विश्लेषण अद्वैत चिन्तन इकाई तक अध्यात्म की एक लीक दर्शाते हुए एक पड़ाव तक लाकर अब धर्म के स्वरूप का चिन्तन अपेक्षित बनाती है। जैव तत्त्व की संरचना में मानव-तंत्र का स्थूल शरीर अव्यक्त प्रकृति से अन्धी प्रकृति तक तथा ग्यारह तत्त्वों की सेन्द्रिय संरचना तक पुरुष की इकाई सहित पचीस तत्त्वों का हो गया। छब्बीसवें तत्त्व अध्यात्म की गति में निर्गुण मत तक की चर्चा के बाद धर्म के तात्त्विक स्वरूप का विश्लेषण अपेक्षित है। पंच ज्ञानेद्रियाँ अपनी तन्मात्राओं के स्वस्थ रहने तक धर्मवान् होती है। ये मन के संवादवाहक हैं। उसी प्रकार पंच कर्मेन्द्रियाँ मन के अनुचर है। मन का मन्त्री है बुद्धि। यह मन से परे तो है परन्तु मन को उससे मन्त्रणा लेकर इच्छा का संपोषण और क्रिया को गति देना आवश्यक है। इस स्वत:स्फूर्त चेतना को विवेक कहते हैं। यह मन का धर्म है। नेत्र रूप देखकर रीझने या खीझने को, घ्राण गन्ध के 'सु' या 'दु:' का, हर्ष या घृणा का, जिह्वा स्वाद का 'सु' या 'कु' को समक्ष कर ग्रहण या त्याग का, कर्ण शब्द की प्रियता या अप्रियता का, स्पर्श त्वचा के संवेदन की कोमलता या कठोरता का विनिश्चय मन को कराते हैं। यही अंगों की शक्ति का नाम धर्म है। अत: व्यष्टि धर्म अंगों के स्वस्थ होने पर उनकी सार्थकता व्यक्त करते हैं। धर्म जीव के आत्मतत्त्व का अंग है। व्यष्टि चेतना जब समष्टि संयम की ओर चलती है तब अंगों के धर्म का द्वन्द्व आरम्भ हो जाता है। यह सम होकर अनुकूलता या विषम होकर प्रतिकूलता का वातावरण रचता है। इस वातावरण में चाह सुसंस्कृति और आह कुसंस्कृति का रूप लेती है।

नर और नारी सृष्टि के अंग हैं। इनकी मैथुनी सृष्टि से मानव-शृंखला प्रकट होती है। देश, काल, आचार और विचार से जीवन की अनुकूलता से कालमान को संवलित करनेवाली समरसता सुसंकृति बनाती है। इसको स्थान विशेष के मनोगत संयम और औदात्य की परम्परा से विकसित किया जाता है। इसकी अग्रणी परम्परा के वे पीढ़ी दर पीढ़ी गत मनीषी होते हैं जिनका अनुगत होकर सामयिक समाज अपनी कल्याणमयी अवधारणा से धर्म का आलम्बन लेती है। धर्म में आस्तिकता से धर्म का आलम्बन लेती है। धर्म में आस्तिकता के उदय के कारण नियन्ता से इसकी प्रवृत्ति संयम सिखाती है। नागरिक इस भय को रूढिवादिता घोषित करके मनोगति को मोह से मोड़ती है। तब परम्परा में धर्म की उपेक्षा होने लगती है। नैतिकता धूमिल पड़ जाती है। धर्म में ईश्वर का भय है। कर्मफल से स्वार्थी के हित का नाश की सोच छोड़कर व्यक्ति निरंकुश हो जाता है।

धर्म ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से मन को परम्परा स्वीकृत आचार-दर्शन से संचेतित करता है। मन कर्मेन्द्रियों के द्वारा व्यष्टि की लोक यात्रा सम्पादित कराता है। वेदान्त के उदय के साथ परमात्म तत्त्व की स्वीकृति और उसके व्यष्टि चेतना में स्थापन का कार्य आरम्भ हुआ है। इससे उपासना का मार्ग निकाला गया।

प्राक् वैदिक परम्परा और वैदिक परम्परा के संगम काल में परस्पर सद्गुणों का आदान-प्रदान हुआ है। वैदिक ऋषियों में व्यष्टि संस्कारों की खोज करके सोलह संस्कारों का वयःक्रम से जीवन में निवेश करके एक ऐसी मनोवैज्ञानिक परम्परा की अवधारणा व्यक्त की है। जिससे इकाईगत समरूपता से सामाजिक जीवन की समरूपता सन्धरित होती चले। 'मन' मानव यंत्र का एक स्वचालित अंग है इसपर सुदीर्घ काल से एक प्रकार की ही अनुभूति मिलती है।

बालगंगाधर तिलक ने भगवद्गीता से अर्वाचीन एक ग्रन्थ नारद पांचरात्र से मार्कण्डेय-नारद-संवाद का उद्धरण दिया है। मार्कण्डेय ऋषि नारद से कहते हैं-

मनसः प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम्।
मनोनुरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः॥

(ना. पं. 1.18 गीतारहस्य उपसंहार, पृ. 483)

महात्मा बुद्ध ने अपने घर से महाभिनिष्क्रमण के बाद धर्मशास्त्रविहित मार्ग से उपासना द्वारा आत्मशान्ति का कठोरतम अभ्यास किया। कठोर उपवास और तपोनुभूति संचय में आत्मज्ञान तक के अर्जन के बाद 'धम्मपद' नामक पुस्तक का प्रणयन किया। उनका भी सन्देश है-

मनोपुब्वांगमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा च षदुट्ठेन भासति वा करोति वा॥
ततो नं दुक्ख मन्वेति चक्कं नु बहतो पदम्॥

दोनों उद्धरण में कालमान का सुदीर्घ अन्तराय है। व्यष्टिगत चिन्तन की समरूपता है। प्रथम उद्धरण भागवत धर्म के ग्रंथ का है। दूसरा बुद्ध-वचन है। तात्पर्य यह है कि मन का मानस रूप बुद्धि द्वारा निश्चित चेतना की गति है। यह मनस्तात्त्विक क्रिया मानव-यंत्र का स्वभाव है। धर्म इन्द्रिय धर्म का मूल रूप है जो मनस्तत्त्व का आस्थामूलक निश्चययात्मक स्वरूप है; लोकयात्रा का चालक है। सामाजिक जीवन में मोहजन्य वृत्तियाँ स्वार्थमूलक हैं। कविकर जयशंकर प्रसाद ने श्रद्धा (कामायनी) से मनु को कहलाया है-

अपने में सब कुछ भर
कैसे व्यक्ति विकास करेगा।
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है
अपना नारा करेगा।।

चालक की असावधानी से दो विपरीत दिशा से आती गाड़ियाँ लड़ जाती हैं। मन की

असावधानी से व्यक्ति द्वारा स्थापित संस्थाओं का स्वरूप विकृत होता है। युद्ध और शान्ति के बीच यही तथ्य कार्यरत है। समासतः धर्म वस्तुतः इन्द्रिय धर्म है जो मातृकुक्षि में ही जीव को अंगों की रचना के लक्ष्य के रूप में मिलता है।

समाज व्यक्तियों का समूह है। समरूप मानसिकता से समाज गठित होता है। इसकी सभी इकाइयों का आत्मसंयम तब तक सुन्दर रहता है जब तक स्वार्थबुद्धि और परमार्थ चेतना का विषय-द्वन्द्व प्रकट नहीं होता है। समाज में सभी इकाइयों का आत्मवत् संगठन जब तक होता है तब तक सुसंगठन होता है। इसके लिए सम्प्रदाय की संरचना की जाती है।

सम्प्रदाय पद 'सम्' उपसर्ग तथा 'प्र' उपसर्ग से जुड़ने पर शान्त और प्रकृष्ट अर्थ देता है। 'दाय' पद परम्परा के रिक्थ को कहते हैं। जो विचार और आचार समूह व्यक्ति मानस को परम्परा के दाय से प्रशान्त दृढ़ता से प्रकट करके अपने सदस्यों को बाँधता है और समर्पित रखता है। वह सम्प्रदाय है। धर्म के व्यापक फलक में सम्प्रदाय की उपस्थिति परम्परा से अलग संशोधित रूप की चिन्तन और आभार बीथि प्रकट करनेवाला है।

प्राक् वैदिक काल से आजतक धर्म के भीतर अनेक सम्प्रदाय प्रकट और विलीन हुए। शाश्वत तत्त्व है मानव जाति के वर्तमान की सामयिक रूझान। यही, धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय और लोक जीवन का तालमेल गठित करता है। हमारी भावात्मक परम्पराओं का गठन स्वतन्त्रता की प्रथम लड़ाई सन् 1857 ई. से आरम्भ होती है। इसके पूर्व का इतिहास मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की जमीन के भीतर दबे अवशेषों से जुड़ता है। आर्य संस्कृति का भारतीय मत जयशंकर प्रसाद के नाटकों के एक गीत में प्रतिष्ठित है-

हिमालय के प्रांगण में उसे
प्रथम किरणों का दे उपहार॥
उषा ने हँस अभिनन्दित किया
और पहनाया हीरक हार॥
जगे हम लगे जगाने लोक
विश्व में फैला फिर आलोक।
व्योमतम पुंज हुआ तब नाश
अखिल संसृति हो उठी अशोक।
विमल वाणी ने वीणा ली
कमल कोमल कर में सप्रीत।
सप्त स्वर सप्त सिन्धु से उठे
उठा तब मधुर साम संगीत॥

x x x

निछावर कर दें हम सर्वस्व
हमारा प्यारा भारतवर्ष।

भारतीय संस्कृति के इस अमर गायक कवि ने 'कामायनी' महाकाव्य में प्रलय के बाद सृष्टि की कथा में संहार से सृष्टि तक की कहानी लिखकर सभ्यता और संस्कृति की विकास गाथा को चिन्ता से आनन्द सर्ग तक की कोमल कठोर मानवीय वृत्तियाँ के संघर्षशील अन्तस् और बाह्य वृत्तियाँ का मनोवैज्ञानिक इतिहास मनु और श्रद्धा के भिन्न-विछोह की गाथाओं में निवेदक, दर्शन और धर्म की एकाग्र गति से दर्शाया है। ''समरस थे जड़ और चेतन आनन्द अखण्ड घना था।'' कामायनी का समाप्त वाक्य है।

भारत का सांस्कृतिक इतिहास समरसता के मनोवैज्ञानिक प्रयत्न से रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत। 'एइ महायानेर सागरतीरे' शीर्षक लम्बी कविता के अर्थ वैभव में पिरोया हुआ है। रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक पुस्तक का आरम्भ इसी गीत से किया है।

परतन्त्रता की चढ़ाइयों और स्वतंत्रता की रक्षा के प्रयत्नों में भारतीय सुभूमि पर असंख्य आगन्तुकों का विरोध, विजय-पराजय की अन्तर्वेदना के प्रशमित रूप का अन्तर्भाव वर्णव्यवस्था के इतिहास की समरस छवि है। दमन और अमन की सामयिक और शाश्वत रीति का रगड़घस्स भारतीयता की विरल सांस्कृतिक भूमि है जो पवित्रताभिमान की घृणामूलकता और पार्थक्य की लोकनीति में जाति के रूप में हिन्दुत्व की काया सहेजती है। दमित वासनाओं की ग्रन्थि से सामाजिक जीवन की परतें वैदिक और बौद्ध की सियासत में राजतन्त्र का इतिहास बना है। धर्मशास्त्रों ने धर्माचरण के भावकोश का गठन करके लक्षणों की रचना की है।

नवधा भक्ति का इतिहास नारदीय सूत्र से तुलसीदास के राम के मानस में साधुत्व का संवल लेकर प्रकट किया गया है। मानस का धर्मशास्त्र धर्मरथ के रूपक में व्यष्टि की आत्म-साधना है। विभीषण को श्रीराम ने धर्मरथ की आत्मशक्ति में विजय की स्थिरता धर्मभूमि की आत्मसत्ता में होती है।

महा अजय संसार रिपु जीति सकै सो बीर।
जाके असरथ होइ दृढ़ सुनहु सखामति धीर॥

मध्यकाल से सुदृढ़ और शान्ति की समस्याएँ उलझती रही हैं। महात्मा बुद्ध के बुद्धत्व के उपरान्त बौद्धधर्म के वैश्विक फलक में लोकाचार और गुह्याचार की संस्कृतियों ने आज तक अपना अस्तित्व सँजोकर रखा है। इनकी उर्वर भूमि है मानवता के सुसंचरण का भौतिक अन्तराय। मध्यकालीन भारत में हिन्दुओं का दमन कट्टर पंथी जेहाद था। जजिया टैक्स का प्रचलन घुसखोरी ही समझना चाहिए। यह अर्थनीति से धार्मिक शोषण है।

धर्मरक्षक भारत शांकर अद्वैत की अध्यात्म भावना से जीवन का सांस्कृतिक इतिहास खड़ा करता है। इसका निवृत्तिमार्ग लोकजीवन को संकटग्रस्त बनाने लगा। सिद्धान्तों की उच्चता और उनके आचरण की पवित्रता जब व्यक्ति में बौद्धिक व्यभिचार से उलझ गया तब ''नारि मुई गृह संपत्ति नासी। मूड़ मुडाय भये संन्यासी'' की सांस्कृतिक गिरावट आयी। वैष्णव आचार्यों ने माया मिथ्यावाद का विरोध करके प्रवृत्ति मार्ग का प्रवर्तन किया है और द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत और विशिष्टा द्वैत दर्शनों के ब्याज से सगुण साधना का व्यापक फलक तैयार किया। रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और निम्बार्क संप्रदायों ने सगुणोपासना और इष्ट देवों के मन्दिरों से धाम को सजाया। नामजप, गुणगायन, लीलावगाहन, रूपाराधन और धामसेवन धर्म की साधनात्मक पद्धति बनी। इन संप्रदायों में द्वैधी भक्ति के तनुजा और वित्तजा दो रूप प्रकट हुए। रागानुगाभक्ति और आराध्य की अन्तरंगता का परिष्कार प्रकट करने लगा। आस्था मनोभाव का विशेष अवलम्ब बनी। कालक्रम से आचार्य पंथ का रामानन्द और वल्लभ रूप क्रमशः राम, सीताराम और राधाकृष्ण का लीलात्मक रूप लेकर इतनी संगठनात्मक भूमिका के साथ समाज में छा गया कि भारतीय महामानव का स्वरूप अपने सारे वर्णों और जातियों की भावात्मक एकता का केन्द्र बन गया।

मध्यकालीन भारत का गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश और मुगलवंश क्रूर और कठोर बनकर हिन्दू और मुसलमान का वैरभाव इतना बढ़ाया गया कि आक्रमण और आत्मरक्षा में महाराणा प्रताप और शिवाजी की कहानियाँ राष्ट्रीयता की वह गाथा बनी जो हिम्मत और बलिदानों से अपनी जीवन-शैली को सुरक्षित करने में अहम् थी।

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
मारवाड़ी महाविद्यालय, भागलपुर,
तिलका माँझी विश्वविद्यालय, भागलपुर

❖

मन्दिर समाचार परिक्रमा

महावीर मन्दिर न्यास समिति ने 2014-15 के लिए एक सौ सैन्तालीस करोड का बजट पारित किया।

महावीर मन्दिर न्यास समिति ने एक सौ सैंतालीस करोड़ का बजट महावीर मन्दिर, विराट् रामायण मन्दिर, महावीर कैंसर संस्थान, महावीर वात्सल्य अस्पताल, महावीर आरोग्य संस्थान, रामायण विश्वविद्यालय एवं मन्दिर के द्वारा संचालित अन्य संस्थानों के लिए पारित किया।

महावीर मन्दिर का यह बजट उत्तर भारत में वैष्णो देवी न्यास के बाद सबसे अधिक है। इस प्रकार यह दूसरा सबसे बडा बजट है। महावीर मन्दिर न्यास के अलावा उत्तर भारत का कोई दूसरा न्यास इतना जनहित कार्य नहीं करता है।

महावीर मंदिर	10,49,28,000	दस करोड़ उनचास लाख अठाइस हजार
विराट रामायण मंदिर	60,00,00,000	साठ करोड़
महावीर कैंसर अस्पताल	47,63,25,000	सैंतालीस करोड़ तिरसठ लाख पच्चीस हजार
महावीर आरोग्य संस्थान	12,48,50,000	बारह करोड अडतालीस लाख पचास हजार
महावीर वात्सल्य अस्पताल	11,83,50,000	ग्यारह करोड तिरासी लाख पचास हजार
रामायण विश्वविद्यालय	1,50,00,000	एक करोड़ पचास लाख
अन्य संस्थान	3,52,51,817	तीन करोड़ बावन लाख इक्यावन हजार आठ सौ सत्रह
कुल	**147,47,04,817**	**एक सौ सैंतालीस करोड़ सैंतालीस लाख चार हजार आठ सौ सत्रह रुपये मात्र**

महावीर कैंसर अस्पताल के कैंसर रोगियों के लिए मंदिर ट्रस्ट उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए एक करोड़ रुपये उपलब्ध कराया गया है।

मन्दिर न्यास को विभिन्न निम्नलिखित स्रोतों से 10 करोड़ 50 लाख की आय होने की आशा है:

चढावा से	2,60,00,000	दो करोड़ साठ लाख
पूजा-पाठ से	1,75,00,000	एक करोड़ पचहत्तर लाख
नैवेद्यम् की बिक्री से लाभ	5,00,00,000	पांच करोड़
अन्य स्रोतों से	1,14,28,000	एक करोड़ चौदह लाख अठाइस हजार
कुल	**10,49,28,000**	**दस करोड़ उनचास लाख अठाइस हजार**

महावीर मंदिर न्यास द्वारा संचालित निम्न संस्थानों के लिए राशि प्रदान की गयी है -

1. राम-जानकी हनुमान मंदिर, शेखपुरा, पटना
2. राम-जानकी गौरीशंकर मंदिर, साहू पोखर, मुजफ्फरपुर
3. विशालनाथ महादेव मंदिर, कोनहारा घाट, हाजीपुर
4. राम-जानकी मठ, इस्माइलपुर, हाजीपुर

महावीर मंदिर ट्रस्ट द्वारा संचालित संस्थान सभी जाति और धर्म के सभी व्यक्तियों के लिए खुले हैं. यह गरीब व्यक्ति और गरीब मरीजों की एक विशेष ख्याल रखता है. एक लाख रुपये से कम आय वाले मरीजों के आवेदन प्राप्त होने पर सभी कैंसर रोगियों को दस हजार रुपये की सहायता राशि दी जाती है. चालू वित्तीय वर्ष के दौरान इस तरह की सहायता की राशि एक करोड़ रुपए को पार कर गयी है।

भगवान् के भोग के रूप में 'पोंगल' का शुभारम्भ

आज दि. 31-03-2014 को महावीर मन्दिर में नववर्ष विक्रम संवत् 2071 के आरम्भ के साथ भगवान् के भोग के रूप में 'पोंगल-भोग' का शुभारम्भ किया गया। यह तिरुपति के मन्दिर में भगवान् को भोग लगाया जाता है। यह अन्न-भोग है जो चावल का बनता है। महावीर मन्दिर में तिरुपति के कुशल सूपकार (रसोइया) इसे पारम्परिक तरीके से बनायेंगे। इसे बनाने के लिए तिरुपति से ही अलग से सूपकार मँगाये गये हैं। तिरुपति के कारीगरों का बनाया हुआ नैवेद्यम् लड्डू भक्तों के बीच ख्याति प्राप्त कर चुका है।

मन्दिर में भी आज से दिन के 11:00 बजे होनेवाली भोग-आरती से पहले हनुमानजी को साथ साथ महावीर मन्दिर में स्थापित अन्य देवताओं को भी भोग लगेगा।

मन्दिर की ओर से यह व्यवस्था की गयी है कि जो श्रद्धालु भगवान् के भोग के लिए 1,100 रुपये का शुल्क जमा करेंगे उनके नाम पर देवता को भोग लगने के बाद प्रसाद के रूप में दिया जायेगा।

आज विहार के महामहिम राज्यपाल महोदय के कर-कमलों से भगवान् के इस भोग का शुभारम्भ होना था, किन्तु उनकी अस्वस्थता के कारण लेडी गवर्नर के कर-कमलों से मध्याह्न 12:30 बजे किया गया। उन्होंने भोग आरती के समय पहले दिन हनुमानजी के मन्दिर में यह भोग अर्पित किया तथा आरती में सम्मिलित हुईं।

इसके बाद मन्दिर परिसर में उपस्थित श्रद्धालुओं ने सहभोज के रूप में यह प्रसाद ग्रहण किया। इस सहभोज में लगभग 500 लोग उपस्थित हुए।

इससे पहले जगन्नाथ मन्दिर, पुरी के अनुरूप 'कैवल्यम्-भोग' की व्यवस्था मन्दिर की ओर से की गयी थी, तथा बिक्री का प्रावधान किया गया था और संख्या अनिश्चित होने कारण अधिक मात्रा में भोग बनाया जाता था जिससे बरबादी होती थी। इस बार बिक्री का प्रावधान नहीं है। जो श्रद्धालु पूर्व में 1,100 रूपये शुल्क जमा करेंगे उन्ही को यह प्रसाद दिया जायेगा।

जानकी नवमी

कल दिनांक 8 मई को महावीर मन्दिर में जानकी नवमी का आयोजन किया गया। परम्परागत रूप से जनकनन्दिनी जानकी का आविर्भाव पर्व वैशाख शुक्ल नवमी के दिन मनाया जाता है। रामानन्दाचार्य ने भी लिखा है कि "वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में नवमी तिथि को पुष्प नक्षत्र में मंगलवार को राजा जनक द्वारा हल से पृथ्वी खोदी गयी जिससे जानकी सीता प्रकट हुईं। इस उपलक्ष्य में व्रत करना चाहिए।" यह पर्व महावीर मन्दिर में धूमधाम के साथ मनाया जाता है।

महावीर मन्दिर में जानकी नवमी के पावन अवसर पर श्रवण कुमार पुरस्कार का वितरण किया जाता है, किन्तु संसदीय चुनाव होने के कारण आचार-संहिता लागू रहने से इस पुरस्कार का वितरण बाद में करने का निर्णय लिया गया। प्रबुद्ध जनों से आग्रह किया गया कि अपने आसपास के ऐसे लोगों की अनुशंसा भेजें जो अपने माता-पिता की सेवा करते हुए एक उदाहरण के रूप में समाज में चर्चित हों।

अन्य वर्षों की तरह इस वर्ष भी जानकी नवमी के अवसर पर अखण्ड कीर्तन का आयोजन किया गया। प्रातःकाल में श्रीसीताराम की भव्य पूजा हुई तथा मध्याह्न आरती के बाद यानी 12:00 बजे से 2:00 बजे पोंगल-प्रसाद का वितरण हुआ।

विराट् रामायण मन्दिर का निर्माण : कला एवं संस्कृति की परियोजना

विराट् रामायण मन्दिर संसार का सबसे विशाल मन्दिर बनने जा रहा है। इसका निर्माण महावीर मन्दिर न्यास की ओर से किया जा रहा है। इसका स्थल पूर्वी चम्पारण जिले में कथवलिया एवं बहुआरा गाँव में मुख्य मार्ग पर करीब 170 एकड़ के भूखण्ड पर स्थित है। इसकी भव्यता का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि 72 फीट की ऊँचाई पर करीब 20 हजार भक्त एक साथ पूजा कर सकते हैं। मन्दिर के शिखर की ऊँचाई 380 फीट होगी तथा लम्बाई एवं चौड़ाई क्रमशः 2268 x 1296 फीट है। इस मन्दिर में 18 शिखर होगें।

रामायण किसी एक धर्म से जुड़ा ग्रन्थ नहीं है बल्कि समग्र दक्षिण-पूर्व एशिया में इसका प्रचलन रहा है। इसके प्रति इण्डोनेशिया, मलेशिया में लाखों मुस्लिम भी आस्था रखते हैं तथा कम्बोडिया, वियतनाम आदि देशों में लाखों बौद्धों का यह श्रद्धेय ग्रन्थ है। रामायण के बारे में विश्व के कुछ महान् लेखकों ने जो अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं उन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है:-

(क) मैकडॉनल ने लिखा है-"Probably no work of world literature, secular in origin, has produced so profound an influence in the life and thought of a people as the Ramayana".

(ख) मोनियर विलियम्स ने लिखा है:-

From Kashmir to Cape Comorin the name of Rama is on everyone's lips. All sects revere it, and show their reverence by employing it on occasions. For example, when friends meet it is common for them to salute each other by uttering Rama's name twice. Then no name is more commonly given to children, and no name is more commonly invoked in the hour of death. It is a link of union for all classes, castes, and creeds.

(ग) मॉरिस विन्टरनित्स के अनुसार,

"Since more than 2000 years the poem of Rama has remained alive in India, and it continues to live in all strata and classes of folk. High and low, princes and peasants, landlords and artisans, princess and shepherdesses, are well versed with the characters and stories of the great epic."

इस मन्दिर के निर्माण में देश एवं दुनिया के अनेक भव्य मन्दिरों की स्थापत्य कला का समावेश किया गया है। यद्यपि इसकी मुख्य वास्तुकला कम्बोडिया के अंकोरवाट मन्दिर के आधार पर किया गया है तथापि इसमें भारत के अनेक दाक्षिणात्त्य मन्दिरों की स्थापत्य कला का भी स्वर्णिम संगम उपस्थित किया गया है। इस प्रकार यह देश एवं विश्व के सबसे आकर्षक मन्दिरों की स्थापत्य कला का अनूठा मन्दिर होगा।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में विराट् रामायण मन्दिर की अनूठी स्थापत्य कला एवं रामायण की समग्र एशिया में सर्वमान्य संस्कृति को ध्यान में रखते हुए इस निर्माण कला एवं संस्कृति की परियोजना मानी जानी चाहिए।

❖

अस्पताल-समाचार

महावीर वात्सल्य अस्पताल के द्वारा संचालित ए. एन. एम. नर्सेज ट्रेनिंग सेंटर ने अध्यापन के क्षेत्र में भी अपना कीर्तिमान स्थापित किया है। यहाँ अध्ययनरत छात्रा निशा ने लखनऊ के प्रतिष्ठित मेडिकल कालेज मे दाखिला प्राप्त कर वात्सल्य अस्पताल का नाम ऊँचा किया है। ग्राम हथुआ, गोपालगंज की रहनेवाली 2013 बैच की सुश्री निशा यहाँ अध्ययन कर इसी अस्पताल में नौकरी भी करने के बाद अब लखनऊ के मेडिकल कालेज में पढ़ रही हैं। अस्पताल की ओर से उन्हें सितम्बर, 2014 में सम्मानित किया गया है। सुश्री निशा को अशेष शुभकामनाएँ।

१५०० बच्चों ने तम्बाकू सेवन न करने की शपथ ली- पटना, ०७ अगस्त। महावीर कैंसर संस्थान की पहल पर पटना के बहादुरपुर क्षेत्र के एक स्कूल में तम्बाकू सेवन के खिलाफ जागरूकता लाने के लिये कार्यक्रम चलाया गया एवं बच्चों को सौगन्ध दिलाया गया कि वे जीवन में कभी भी तम्बाकू उत्पादों का सेवन नहीं करेंगे। महावीर कैंसर संस्थान के निदेशक ने कहा कि कैंसर आज महामारी की तरह फैल रहा है। इसका मुख्य कारण तम्बाकू के उत्पादों का धड़ल्ले से सेवन का प्रचलन है। स्वस्थ जीवन जीने एवं कैंसर जैसे रोग से बचने के लिये बच्चे सौगन्ध लें कि वे न तो जीवन में कभी तम्बाकू उत्पादों का सेवन करेंगे और न अपने परिवार के लोगों को तम्बाकू उत्पादों का सेवन करने देगें। कार्यक्रम में स्कूल के 1500 बच्चों ने भाग लिया।

महावीर कैंसर संस्थान में विश्वविख्यात स्त्री-रोग-विशेषज्ञ डा. शावकी के निर्देशन में हैण्ड्स ऑन ट्रेनिंग कार्यशाला- ३० अगस्त । विश्वविख्यात स्त्री-रोग विशेषज्ञ जर्मनी के डा० ओसामा शावकी ने आज भारत में पहली बार महावीर कैंसर संस्थान में बिहार एवं झारखण्ड के स्त्री-रोग विशेषज्ञों को Hands on Training on Office Hysteroscopy Workshop का निर्देशन किया। इस कार्यशाला में बिहार और झारखण्ड के अलावे देश के विभिन्न प्रान्तों के लगभग 300 स्त्रीरोग विशेषज्ञों ने भाग लिया।

इस कार्यशाला के माध्यम से लेप्रोस्कोपी विधि से गर्भाशय की बिमारी का पता लगाने का प्रशिक्षण ही नहीं दिया गया बल्कि इलाज भी संभव कर दिखाया गया। ऐसा पहली बार हुआ है कि बिहार-झारखण्ड के स्त्रीरोग विशेषज्ञों ने **डा. ओसामा शावकी** के निदेशन में ऑपरेशन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस विधि से किये गये ऑपरेशन में रोगी को कोई तकलीफ नहीं होती है। रोगी को पूर्णत: बेहोश भी नहीं किया जाता है बल्कि Local Aneasthesia देकर सारा काम कर दिया जाता है।

डा० ओसामा शावकी (जर्मनी) ने बताया कि भारत के लोगों की मेधा का जबाब नहीं है। वे तीस बार भारत आ चुके हैं और भारत के विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न शहरों का दौरा किया है। डा० शावकी ने कहा प्रत्येक दौरा में उन्होंने यहाँ के चिकित्सकों को अपने व्याख्यान और प्रशिक्षण से जो दिया है उतना ही उनके तेज, उनकी लगन और उनकी प्रतिबद्धता से सीखा भी है। समारोह के मुख्य अतिथि आर्यभट्ट ज्ञान विश्वविद्यालय के कुलपति डा० उदय मिश्र ने भारतीय उपनिषद् का हवाला देते हुए कहा है कि शिक्षा प्राप्त करने, ज्ञान प्राप्त करने से जो आनन्द प्राप्त होता है उससे कहीं अधिक आनन्द दूसरे को ज्ञान और शिक्षा देकर प्राप्त होता है। महावीर कैंसर संस्थान ने जो यह कार्यशाला का आयोजन किया है वह प्रशंसनीय है और डा० ओसामा शावकी ने जो बिहार-झारखण्ड के स्त्री-रोग विशेषज्ञों को शिक्षा और ज्ञान कार्यशाला के दरम्यान दिया है वह अतुलित है।

❖